तृतीय वर्ष कला

सत्र - V (CBCS)

प्रश्नपत्र क्र. ४

हिंदी साहित्य का इतिहास

(HISTORY OF HINDI LITERATURE)

पेपर कोड - 97003

© UNIVERSITY OF MUMBAI

प्रा. सुहास पेडणेकर
कुलगुरू,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

प्रा. रवींद्र कुलकर्णी,
प्र-कुलगुरू,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

प्रा. प्रकाश महानवार, संचालक,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

कार्यक्रम समन्वयक : **प्रा. अनिल बनकर**
सहयोगी प्राध्यापक, इतिहास विभाग व प्रमुख,
मानव्य विद्याशाखा,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

अभ्यास समन्वयक, संपादक व लेखक : **डॉ. संध्या शिवराम गर्जे**
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी),
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था (IDOL),
मुंबई विश्वविद्यालय, कलिना,
सांताक्रुज (ई), मुंबई-४०० ०९८.

: **डॉ. अनिल गोविन्द चौधरी**
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी),
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था (IDOL),
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई.

सप्टेंबर २०२२, प्रथम मुद्रण

प्रकाशक
संचालक,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई - ४०००९८.

अक्षरजुळणी
मुंबई विद्यापीठ मुद्रणालय,
सांताक्रुझ, मुंबई.

अनुक्रमणिका

क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
१.	हिन्दी साहित्य का काल विभाजन एंव नामकरण	१
२.	आदिकालीन हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि	१५
२.१.	सिद्ध, नाथ, जैन एवं रासो साहित्य की विशेषताएँ	२१
३.	भक्तिकाल की पृष्ठभूमि	३७
४.	संत काव्य : परम्परा और प्रवृत्तियाँ	४३
५.	सूफी काव्य : परम्परा एवं विशेषताएँ	५३
६.	रामभक्ति काव्य की विशेषताएँ	६२
७.	कृष्णभक्ति काव्यधारा की विशेषताएँ	७०
८.	रीतिकाल	८०
९.	रीतिकालीन काव्य एवं प्रवृत्तियाँ	८५

*****

NAME OF PROGRAM	T. Y. B. A. (C.B.C.S.) IV
NAME OF THE COURSE	T.Y.B.A. HINDI
SEMESTER	V
PAPER NAME	HISTORY OF HINDI LITERATURE हिंदी साहित्य का इतिहास
PAPER NO.	IV
COURSE CODE	UAHIN–501
LACTURE	60
CREDITS & MARKS	CREDITS - 4 & MARKS-100

हिंदी साहित्य का इतिहास

इकाई– I हिंदी साहित्य का इतिहास–

- हिंदी साहित्य का काल–विभाजन
- हिंदी साहित्य का नामकरण

इकाई– II आदिकाल–

- आदिकालीन हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि
- सिद्ध, नाथ, जैन एवं रासो साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ

इकाई– III भक्तिकाल–

- भक्तिकालीन हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि
- संत काव्य, सूफी काव्य, रामभक्ति काव्य, कृष्णभक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ

इकाई– IV रीतिकाल–

- रीतिकालीन हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि
- रीतिबध्द, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त काव्य की प्रमुख प्रवृतियाँ

निर्धारित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों की सूची–

1. हिंदी साहित्य के इतिहास का काल–विभाजन सर्वप्रथम किसने किया?
2. हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन का सबसे पहला प्रयास किसका था?
3. आ.रामचंद्र शुक्ल के इतिहास ग्रंथ का नाम क्या है?
4. आदिकाल को 'बीजवपन काल' किस विद्वान ने कहा है?
5. हिंदी साहित्य के प्रारम्भिक काल को 'आदिकाल' नाम किसने दिया?
6. रीतिकाल का 'श्रृंगार काल' नामकरण किसने किया है?
7. राहुल सांकृत्यायन हिंदी का पहला कवि किसे मानते हैं?
8. कवि स्वयंभू किस भाषा के कवि है?
9. किस कवि को 'मैथिल कोकिल' कहा गया है?
10. आदिकाल में खड़ीबोली को काव्य भाषा बनाने वाले प्रथम कवि कौन थे?
11. चौरासी सिध्दों में सबसे ऊँचा स्थान किसका है?
12. 'दोहाकोश' के रचयिता कौन हैं?
13. सिध्दों की भाषा को 'संधा–भाषा' किसने कहा है?
14. नाथ संप्रदाय के प्रवर्तक कौन हैं?
15. नाथों की संख्या कितनी है?
16. 'हठयोग' किस संप्रदाय से संबंधित है?
17. 'उलटबासियाँ' किस साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है?
18. जैन धर्म के प्रवर्तक कौन हैं?
19. प्रथम जैन कवि कौन है?
20. जैन साहित्य में कौन से ग्रंथ सबसे अधिक लोकप्रिय माने जाते हैं?
21. 'परमाल रासो' के रचयिता कौन हैं?
22. रासो काव्य परंपरा का सर्वश्रेष्ठ एवं प्रतिनिधि ग्रंथ कौन–सा है?
23. 'भरतेश्वर बाहुबली रास' के रचनाकार कौन है?
24. 'खुमान रासो' किसकी रचना है?
25. 'युद्धों का सजीव वर्णन' किस साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है?
26. भक्तिकाल की दो काव्यधाराएँ कौन–सी हैं?
27. जाति–पाति के बंधनो का खुलकर विरोध किसने किया?
28. 'राजतरंगिणी' में किसका इतिहास वर्णित है?
29. रत्नसेन किस महाकाव्य का नायक है?
30. भक्ति की लहर का उद्भव कहाँ से हुआ था?
31. चैतन्य सम्प्रदाय के प्रवर्तक कौन हैं?
32. आलवार भक्तों की संख्या कितनी है?
33. स्वामी हरिदास किस सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे?
34. बहुदेववाद तथा अवतारवाद का विरोध किसने किया?

35. संतों का रहस्यवाद किससे प्रभावित है?
36. सुन्दरदास किसके शिष्य थे?
37. 'मृगावती' के रचयिता कौन हैं?
38. 'ज्ञानदीप' के रचनाकार का नाम लिखिए?
39. आईने अकबरी में सूफ़ियों के कितने सम्प्रदाय का उल्लेख है?
40. पद्मावत काव्य में राघव, चेतन को किस रूप में चित्रित किया गया है?
41. रामानंद के भक्त सम्प्रदाय का क्या नाम है?
42. तुलसीदास जी के गुरु का नाम क्या है?
43. हिन्दी साहित्य के किस काव्य में विराट समन्वय की भावना है?
44. तानसेन के गुरु का नाम क्या था?
45. पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक कौन हैं?
46. 'हित चौरासी' रचना के रचयिता कौन हैं?
47. रीतिकाल को 'रीतिकाल' की संज्ञा किसने दी?
48. 'हित तरंगिणी' के रचयिता कौन हैं?
49. 'कविप्रिया' के रचनाकार कौन हैं?
50. रीतिकाल के अंतिम बड़े आचार्य कौन हैं?

51. आदिकाल को 'वीरगाथा काल' किस विद्वान ने कहा है?
i) आ. रामचंद्र शुक्ल ii) मिश्रबन्धु
iii) राहुल सांकृत्यायन iv) डॉ. रामकुमार वर्मा
52. गार्सा–द–तासी के हिंदी साहित्य के इतिहास की भाषा कौन–सी है?
i) फ्रेंच ii) हिंदी
iii) फ़ारसी iv) अरबी
53. आदिकाल का प्रमुख रस कौन–सा है?
i) श्रृंगार ii) वीर
iii) करुण iv) शांत
54. आदिकाल को 'वीर काल' नाम किसने दिया है?
i) आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ii) जॉर्ज ग्रियर्सन
iii) विश्वनाथप्रसाद मिश्र iv) महावीरप्रसाद द्विवेदी
55. गार्सा–द–तासी की इतिहास लेखन परंपरा को आगे बढ़ाने का श्रेय किसे जाता है?
i) शिवसिंह सेंगर ii) जॉर्ज ग्रियर्सन
iii) आ. रामचंद्र शुक्ल iv) मिश्रबन्धु
56. जैन कवि शालीभद्र सूरि को हिन्दी का प्रथम कवि किसने माना है?
i) राजनाथ शर्मा ii) गणपतिचन्द्र गुप्त
iii) आचार्य शुक्ल iv) रामकुमार वर्मा

57. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास के लेखक कौन हैं?

i) डॉ. रामकुमार वर्मा ii) डॉ. नगेन्द्र

iii) डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त iv) शिवकुमार शर्मा

58. 'हिंदी साहित्य की भूमिका' पुस्तक के लेखक कौन है?

i) आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ii) बच्चन सिंह

iii) राहुल सांकृत्यायन iv) मिश्रबन्धु

59. 'खालिकबारी' के रचयिता कौन हैं?

i) अमीर खुसरो ii) मुल्ला दाऊद

iii) चंदबरदाई iv) जगनिक

60. सिध्दों की संख्या कितनी मानी जाती है?

i) 80 ii) 82

iii) 84 iv) 89

61. नाथ पंथ के प्रवर्तक कौन हैं?

i) गोरखनाथ ii) मत्स्येन्द्रनाथ

iii) नागनाथ iv) आदिनाथ

62. कौन–सी शैली जैन रचनाओं की नहीं है?

i) रास ii) फागु

iii) चर्यापद iv) चरित

63. 'बीसलदेव रासो' के रचयिता कौन हैं?

i) नरपति नाल्ह ii) दलपति विजय

iii) हमीर हठ iv) चंदबरदाई

64. खुसरो की पहेलियों और मुकरियों की विशेषता क्या है?

i) श्रृंगार ii) परिहास

iii) उक्तिवैभिन्य iv) उक्तिवैचित्र्य

65. भक्ति आंदोलन मुस्लिम साम्राज्य के प्रभाव का परिणाम है।" इस मत को नहीं मानने वाले विद्वान कौन है?

i) ताराचन्द ii) आ. रामचन्द्र शुक्ल

iii) रामस्वरूप चतुर्वेदी iv) वल्लभाचार्य

66. उत्तरी भारत में भक्ति आंदोलन की त्रिमूर्ति कौन थे?

i) कबीर, नानक, दादू ii) कबीर, नानक , रैदास

iii) कबीर, रामानंद, रैदास iv) कबीर, रामानंद, शंकराचार्य

67. 'बीजक' किसकी प्रसिद्ध रचना है?

i) सूरदास ii) कबीर

iii) जायसी iv) दयाल

68. "संतन को कहा सीकरी सो काज" किसकी पंक्ति है?

i) कुंभनदास ii) नाभादास

iii) चतुर्भुजदास iv) तुलसीदास

69. नानक किस काव्यधारा के कवि हैं?

i) सूफ़ी काव्य ii) राम काव्य

iii) संत काव्य iv) कृष्ण काव्य

70."मानुष प्रेम भयउ बैकुंठी" किस कवि की पंक्ति है?

i) दादू दयाल ii) मुल्ला दाउद

iii) कुतुबन iv) जायसी

71. 'भ्रमरगीत' के रचयिता कौन हैं?

i) तुलसीदास ii) बिहारी

iii) सूरदास iv) कबीरदास

72. सैयद इब्राहिम ने कृष्णभक्ति के प्रभाववश अपना नाम रख लिया?

i) कृष्णदास ii) रामदास

iii) रसखान iv) प्रेमदास

73. 'पुष्टिमार्ग का जहाज' किस कवि को कहा गया है?

i) कबीरदास ii) तुलसीदास

iii) केशवदास iv) सूरदास

74. अकबर दरबार के किस सदस्य ने 'दोहावली' की रचना की?

i) बीरबल ii) रहीम

iii) तानसेन iv) बिहारी

75. नामदेव द्वारा लिखित सगुण पदों की भाषा क्या थी?

i) मराठी ii) अवधी

iii) ब्रजभाषा iv) संस्कृत

76. द्वैताद्वैतवाद दर्शन को मानने वाले आचार्य इनमें से कौन हैं?

i) रामानंद ii) मध्वाचार्य

iii) चैतन्य महाप्रभु iv) रामानुजाचार्य

77. निर्गुण भक्ति साहित्य को ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी भागों में विभाजित करने वाले विद्वान कौन हैं?

i) डॉ. रामकुमार वर्मा ii) आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

iii) नामवर सिंह iv) आ. रामचंद्र शुक्ल

78. प्रेमाश्रयी शाखा को सूफ़ी काव्य कहने वाले विद्वान निम्नलिखित में से कौन है?

i) डॉ. रामकुमार वर्मा ii) आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी

iii) आ. रामचंद्र शुक्ल iv) डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त

79. वल्लभाचार्य ने किसकी उपासना पर बल दिया है?

i) श्रीराम ii) गणेश

iii) बालकृष्ण iv) विष्णु

80. वारकरी सम्प्रदाय की स्थापना किसने की?

i) नामदेव ii) कबीर

iii) संत ज्ञानेश्वर iv) सुंदरदास

81. 'चित्रावली' के रचयिता कौन हैं?

i) कुतुबन ii) जायसी

iii) उसमान iv) शेख नबी

82. 'महानुभाव सम्प्रदाय' की स्थापना किसने की है?

i) रामानंद ii) तुलसीदास

iii) श्रीचक्रधर स्वामी iv) स्वामी हरिदास

83. नाभदास की भक्तमाल में रामानंद के कितने शिष्य बताए गए हैं?

i) दस ii) बारह

iii) चौदह iv) सोलह

84. 'राधावल्लभ सम्प्रदाय' के प्रवर्तक कौन है?

i) स्वामी हरिदास ii) हितहरिवंश

iii) सूरदास iv) वल्लभाचार्य

85. किस काल को ब्रजभाषा का स्वर्ण युग कहा जाता है?

i) आदिकाल ii) भक्तिकाल

iii) रीतिकाल iv) आधुनिक काल

86. रीतिकाल को 'अलंकृतकाल' किसने कहा है?

i) डॉ. रामकुमार वर्मा ii) आ. रामचंद्र शुक्ल

iii) आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी iv) मिश्रबंधु

87. 'रसमंजरी' के रचयिता कौन हैं?

i) चिंतामणि ii) केशव

iii) भिखारीदास iv) मतिराम

88. आचार्य शुक्ल ने रीतिकाल का प्रवर्तक किसे माना है?

i) आचार्य चिंतामणि ii) कवि ग्वाल

iii) केशव iv) कृपाराम

89. 'रसराज' के रचयिता कौन है?

i) घनानंद ii) मतिराम

iii) बोधा iv) ठाकुर

90. घनानंद को अमर करने वाली रचना का नाम क्या है?

i) रसराज ii) सुजान हित

iii) कविप्रिया iv) ललित ललाम

91. रीतिमुक्त काव्यधारा का अंतिम कवि किसे माना जाता है?

i) चिंतामणि ii) द्विजदेव

iii) भूषण iv) केशव

92. 'ललित ललाम' किसकी रचना है?

i) घनानंद ii) मतिराम

iii) बोधा iv) आलम

93. 'साहित्य लहरी' में किसकी लीला का वर्णन है?

i) बालकृष्ण ii) राधा–कृष्ण

iii) कृष्ण iv) राम–सीता

94. "मैं तो समझती थी की वृन्दावन में कृष्ण के अतिरिक्त कोई दूसरा पुरुष है ही नहीं, पर अब पता चला यहाँ कोई दूसरा पुरुष भी रहता है।" यह वाक्य किसने कहा है?

i) राधा ii) रुक्मिणी

iii) मीरा iv) यशोदा

95. "निर्गुण कौन देस को बासी?" किसकी पंक्ति है?

i) सूरदास ii) कबीरदास

iii) तुलसीदास iv) मीराबाई

96. "बिगरी बात बने नहीं, लाख करो किन कोय।" पंक्ति के कवि कौन है?

i) बिहारी ii) रहीम

iii) आलम iv) मतिराम

97. रीतिमुक्त काव्य धारा के प्रमुख कवि इनमें से कौन है?

i) बिहारी ii) देव

iii) घनानंद iv) पद्माकर

98. 'रामचंद्रिका' के रचयिता का नाम क्या है?

i) तुलसीदास ii) भिखारीदास

iii) नाभादास iv) केशवदास

99. पद्माकर इनमें से किस काव्यधारा के कवि है?

i) रीतिबद्ध ii) रीतिसिद्ध

iii) रीतिमुक्त iv) सूफ़ी

100. स्वच्छंद प्रेम के गायक कौन हैं?

i) वृंद ii) आलम

iii) देव iv) मतिराम

नमूना प्रश्न पत्र

Semester – V | Course – IV

समय: 3:00 घंटे | पूर्णांक: 100

सूचना : 1. सभी प्रश्न अनिवार्य है।
2. सभी प्रश्नों के लिए समान अंक हैं।

प्रश्न 1. हिंदी साहित्य के इतिहास के काल–विभाजन पर विस्तार से प्रकाश डालिए। 20

अथवा

आदिकाल के नामकरण के संबंध में विभिन्न विद्वानों के मत स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2. हिंदी साहित्य की आदिकालीन परिस्थितियों का सामान्य परिचय दीजिए। 20

अथवा

नाथ साहित्य की प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 3. सूफ़ी काव्य की सामान्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। 20

अथवा

कृष्णभक्ति काव्य की प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 4. रीतिकालीन साहित्य की परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए। 20

अथवा

रीतिबध्द काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 5. क) किन्हीं दो विषयों पर टिप्पणियाँ लिखिए। 10

1. आ.रामचन्द्र शुक्ल का काल–विभाजन
2. सिध्द काव्य
3. संत काव्य
4. रीतिमुक्त काव्य

ख) वस्तुनिष्ठ प्रश्न– 05

1. आदिकाल को 'बीजवपन काल' किस विद्वान ने कहा है?
2. नाथ संप्रदाय के प्रवर्तक कौन हैं?
3. भक्तिकाल की दो काव्यधाराएँ कौन–सी हैं?
4. 'मृगावती' के रचियता कौन हैं?
5. रीतिकाल के अंतिम बड़े आचार्य कौन हैं?

ग) विकल्प प्रश्न– 05

1. आदिकाल को 'वीरगाथा काल' किस विद्वान ने कहा है?

i) आ. रामचंद्र शुक्ल ii) मिश्रबन्धु

iii) राहुल सांकृत्यायन iv) डॉ. रामकुमार वर्मा

2. 'ख़ालिकबारी' के रचयिता कौन हैं?

i) अमीर ख़ुसरो ii) मुल्ला दाऊद

iii) चंदबरदाई iv) जगनिक

3. नानक किस काव्यधारा के कवि हैं?

i) सूफ़ी काव्य ii) राम काव्य

iii) संत काव्य iv) कृष्ण काव्य

4. 'पुष्टिमार्ग का जहाज़' किस कवि को कहा गया है?

i) कबीरदास ii) तुलसीदास

iii) केशवदास iv) सूरदास

5. आचार्य शुक्ल ने रीतिकाल का प्रवर्तक किसे माना है?

i) आचार्य चिंतामणि ii) कवि ग्वाल

iii) केशव iv) कृपाराम

१

हिन्दी साहित्य का काल विभाजन एंव नामकरण

इकाई की रूपरेखा

१.० इकाई का उद्देश्य

१.१ प्रस्तावना

१.२ साहित्य-इतिहास

१.२.१ भारतीय दृष्टिकोण

१.२.२ पाश्चात्य दृष्टिकोण

१.३ हिन्दी साहित्य का काल विभाजन एंव नामकरण

१.३.१ गार्सा द तासी

१.३.२ शिव सिंह सेंगर

१.३.३ जार्ज ग्रियर्सन

१.३.४ मिश्र बंधु

१.३.५ आचार्य रामचंद्र शुक्ल

१.३.६ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

१.३.७ डॉ. रामकुमार वर्मा

१.३.८ डॉ. नगेन्द्र

१.३.९ गणपति चंद्र गुप्त

१.४ सारांश

१.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१.६ लघुत्तरीय प्रश्न

१.७ संदर्भ पुस्तकें

१.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी निम्न लिखित मुद्दों से अवगत होंगे:

- साहित्य इतिहास की लेखन परम्परा को जान सकेंगे।
- साहित्य इतिहास लेखन में भारतीय दृष्टिकोण और पाश्चात्य दृष्टिकोण का अध्ययन करेंगे।
- इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी हिन्दी साहित्य का विभिन्न विद्वानों द्वारा किया गया काल विभाजन व उनके द्वारा किए गए कालविभाजन का मूल्यांकन व उससे संबंधित विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करेंगे।

१.१ प्रस्तावना

साहित्य की उपमा नदी से कर उसे नदी की बहती धारा के समान बताया गया है। जो कभी भंग नहीं होती,समय के साथ इसका विकास अटल होता है लेकिन समय के पढ़ाव के साथ सहित्यिक परिवेश इसकी विशेषताएँ बदलती रही है और साहित्य के समग्र अध्ययन के अध्यापन की सुविधा के लिए काल विभाजन और नामकरण की उपयोगिता को अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

१.२ साहित्य इतिहास

किसी भी विषय के अध्ययन के पूर्व उसके गत इतिहास को जानना आवश्यक होता है। क्योंकि इतिहास के अध्ययन से तत्कालीन समय के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि हमें ज्ञात हों जाती है। और प्रगति का मार्ग अवलंबित करने में आसानी होती है। इस संबंध में रेनवेलेक का मत इस प्रकार है-

'साहित्य के इतिहास का प्रयोजन है साहित्य की प्रगति, परंपरा, निरंतरता और विकास की पहचान करना है । साहित्य इतिहास में हम रचनाओं का उगम, परम्परा और उससे सम्बन्धित परिवेश का अध्ययन करेंगे।

सन १९ वी सदी में साहित्य संबंधी इतिहास में सर्वप्रथम राजनीतिक इतिहास हमें ज्ञात होता है। इसके अंतर्गत ही साहित्यिक और सांस्कृतिक परिवेश पर यदि हम दृष्टि डाले तो इसमें सामान्यत: राजाओं की पत्नियों द्वारा राजाओं की प्रशंसा में लिखा काव्य आता है। यहीं से साहित्य इतिहास की नीव तय होती है। समय के साथ साहित्यिक विकास का पथ अग्रसर हुआ जो उस समय के सामाजिक राजनीतिक और सांस्कृतिक वातावरण पर आधारित था। वहीं साहित्य और साहित्यकार दोनो के विवेचन के आधार पर साहित्य अध्ययन की परिधि तैयार होती है। साहित्य कार विरहीत साहित्य का अध्ययन आधा अधूरा ही माना जायगा क्योंकि साहित्यकार के अध्ययन सें ही समय – काल और परिस्थिति का आढ़ावा हमें मिलता है जो साहित्य – इतिहास के अध्ययन में आवश्यक है। इस संदर्भ में भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण अलग अलग है जो इस प्रकार है:

१.२.१ भारतीय दृष्टिकोण:

भारतीय परिवेश प्रारंभिक काल से ही आध्यात्मिक रहा है जो अपने आदर्शवाद को लेकर आगे बढ़ता है। इसी आधार पर भारतीय इतिहासकार उन प्रवृत्तियों को खोजते है जो विषय को अमरत्व प्रदान करे। इस प्रकार की सभी कार्य प्रणाली समाज के हित में है क्योंकि हमारे प्राचीन युग का इतिहास नैतिक उपदेशों, चरित्रत्य, आध्यात्मिक चित्रण के आधार पर पौराणिक स्वरूप में परिवर्तित हुआ।

परंतु समय के ओघ में कुछ विद्वान ऐसे भी हुए जिन्होंने यथार्थ परक, दृष्टिकोण को अपनाते हुए वस्तुस्थिति और तथ्यों को अधिक महत्व दिया इन इतिहास कारों में बाण और कल्हण का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। आधुनिक भारतीय इतिहास कारों के संदर्भ में साहित्य इतिहास का अध्ययन करे तो इन इतिहास कारों में प्रमुखत: दो नाम हमारे सामने

आते है । डॉ. राहुल साकृत्यायन तथा डॉ. धर्मानंद कोसंबी जिन्होंने साहित्य इतिहास विषयक अध्ययन समाज और संस्कृति को आधार मान कर किया है जो परंपरागत दृष्टि से कुछ भिन्न है । इन इतिहासकारों की यह विशेषता रही है कि ये भारतीय समाज की वास्तविकताओं को न भूलते है और नही उस परम्परा का गुणगान करते है बल्कि वर्तमान को ध्यान में रखकर भारतीय समाज और इतिहास की गणना नये तरीके से करते है । इस विषय में डॉ. नगेन्द्र का मानना है – भारतीय इतिहास कारों की दृष्टि आदर्शवाद की है तो पाश्चात्य दृष्टि यथार्थवादी है।

१.२.२ पाश्चात्य दृष्टिकोण:

पाश्चात्य विद्वानों के मत एक रूप नहीं है इन मतों में परस्पर भिन्नता का स्वर दिखता है । यूनानी विद्वान हिरोदोतस जो इतिहास के प्रथम व्याख्याता माने जाते है इन्होने इतिहास के प्रमुख चार लक्षण बताए है –

(१) इतिहास वैज्ञानिक विद्या है, अतः इसकी पद्धति आलोचनात्मक होती है।

(२) यह मानवजाति से सम्बन्ध विद्या है इसलिए वह मानविकी विद्या है।

(3) यह तर्क संगत विद्या है । अतः इसके तथ्य और निष्कर्ष सिर्फ प्रमाण पर आधारित होते है।

(४) इतिहास अतीत के आलोक में भविष्य पर प्रकाश डालता है, जो शिक्षाप्रद विद्या होती है । इस प्रकार हिरोदोतस आत्मा और भावों का प्रधानता नहीं देते बल्कि प्राकृतिक और भौतिक जगत की परिवर्तनशीलता का समागम इतिहास में करते है।

जर्मन दार्शनिक कान्ट बाह्य सृष्टि की विकास प्रक्रिया को प्राकृतिक आन्तरिक विकास प्रक्रिया का केवल मात्र प्रतिबिंब मानते है और उनका मानना है कि इतिहास को भी इसी नजरिये से देखा जाना चाहिए । क्योंकि प्रत्येक ऐतिहासिक घटना के पीछे प्राकृतिक नियमों की प्रवृति को समझने के प्रयास पर बल देने की बात उन्होंने कही है।

हिगेल नामक विद्वान ने कांट की विचारधारा का समर्थ न करते हुए कहा है – "इतिहास केवल घटनाओं का अन्वेषण संकलन- मात्र नहीं है, अपितु उसके भीतर कारण- कार्य की श्रृंखला विद्यमान होती है । उनके अनुसार विश्वइतिहास की प्रक्रिया का मूल लक्ष्य मानव चेतना की विकास है और वह द्वंदात्मक पद्धति पर आश्रित होता है । यह द्वंदात्मक प्रक्रिया वाद-प्रतिवाद से गुजरती हुई समवाद के रूप में विकसित होती है । इस प्रकार हिगेल इतिहास की व्याख्यात्मक अध्ययन पद्धति को ही अनुरूप मानते है।

इस संबंध में कार्ल मार्क्स ने कहा है कि तदयुगीन विशिष्ट सामाजिक विकास से यूनानी कला और महाकाव्यात्मक कविता से सन्बद्ध का बोध कठिन नहीं है, बल्कि वर्तमान काल में उनकी कलात्मक श्रेष्ठता और सौंदर्यबोधीय आनंद प्रदान करने की क्षमता का विश्लेषण करना कठिन काम है । मार्क्स के इस वक्तव्य पर भारतीय विद्वान मॅनेजर पाण्डेय कहते है- मार्क्स कृति की उत्पत्ति पर या उसके अतीत पर नहीं उसके वर्तमान सौंदर्य बोधिय स्वरूप के विश्लेषण पर ही बल देते है।

ए. एच. कॉफे ने महान कवि गेटे के साहित्य का अध्ययन युग चेतना के आधार पर किया है उनका कहना है कि इतिहास की व्याख्या करते समय युगीन चेतना का अध्ययन किया जा सकता है लेकिन यह बात नहीं भूलनी चाहिए की पूर्ववर्ती युग की चेतना का भी कम अधिक रूप में युग चेतना को निर्मित करने में योगदान रहता है।

इस प्रकार विभिन्न मतों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि साहित्य- इतिहास अध्ययन के अनेकों मार्ग है। परंतु यह तय है कि साहित्य इतिहास का अध्ययन करते समय विषयगत एवं शैलीगत प्रवृत्तियों का विवेचन- विश्लेषण आवश्यक है। "डॉ. नगेन्द्र ने साहित्य- इतिहास के अध्ययन के लिए पाँच तत्वों का होना महत्वपूर्ण माना है। १. साहित्यकार की प्रतिभा और उसका व्यक्तित्व अर्थात सृजनशील २. परम्परा ३. वातावरण ४. द्वंद ५. संतुलन | डॉ. नगेन्द्र का मानना है कि ये सभी घटक साहित्य इतिहास को निरंतर गतिशीलता प्रदान करते है।

१.३ हिन्दी साहित्य का काल विभाजन व नामकरण

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य इतिहास का हम अध्ययन करें तो यही पायेंगे कि समय के प्रवाह के साथ साहित्य की गति भी निरंतर बढ़ती रही है। आज हिन्दी साहित्य का १००० से ८०० वर्षो का इतिहास हमारे सामने प्रस्तुत है, जो अनेकानेक पढ़ावो से होकर गुजरा है। साहित्य इतिहास के काल विभाजन और नामकरण के अध्ययन की सबसे उपयुक्त प्रणाली साहित्य में प्रवाहित साहित्यिक धाराओं, और उन धाराओं की विविध प्रवृत्तियों के आधार पर उसे विभाजित करना है। क्योंकि उस विशेष काल में समाज में व्याप्त सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियां और विचारधाराओं का सम्बन्ध सीधे साहित्य से रहा है। और इन सभी संदर्भो के अनुरूप साहित्यिक कृतियाँ रची गयी है। यही कारण है कि तत्कालीन समाज में घटित घटनाओं और परिस्थितियों का सक्षात्कार हम साहित्य में देख सकते है।

काल विभाजन करते समय आचार्य रामचंद्र शुक्लजी अपना स्पष्ट मत दिया है। वे कहते है- "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्र वृत्ति का संचित्र प्रतिबिम्ब होता है। तब यह निश्चित है कि जनता की चित्रवृत्ति के परिवर्तन के साथ- साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक इन्ही चित्रवृतियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।

काल विभाजन के अध्ययन संबंधी जानकारी के विविध आधार हिन्दी साहित्य इतिहास की अध्ययन सामग्री 'भक्तमाल', 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' आदि ग्रंथों में है। लेकिन इन ग्रंथों में साहित्य इतिहास की जानकारी मिल जाती है लेकिन काल विभाजन और नामकरण की कोई स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है। और हमारे अध्ययन का प्रमुख विषय है हिन्दी साहित्य का काल विभाजन और नामकरण किस तरह हुआ। इस अध्ययन से संबंधित तीन प्रश्न हमारे सामने प्रस्तुत है:

१) हिन्दी साहित्य का काल विभाजन किसने किया?

२) काल विभाजन की आवश्यकता क्यों पड़ी?

३) काल विभाजन का आधार क्या रहा?

उक्त प्रश्न श्रृंखला के अनुसार सर्वप्रथम हम जानेंगे काल विभाजन की आवश्यकता क्यों?

विभिन्न विद्वानों ने काल विभाजन के प्रमुख तीन कारण माने है:

१. साहित्य अध्ययन की सुविधा के लिए काल विभाजन आवश्यक होता है।

२. साहित्य को सही ढंग से सही रूप में समझने के लिए काल विभाजन आवश्यक है।

३. साहित्य के विकास में सहायक तत्व और साहित्य की दिशा को जानने के लिए काल विभाजन की आवश्यकता है।

इस विषय के संदर्भ में साहित्यिक विद्वान रेनवेलेक ने अपना मत इस प्रकार प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार- "काल विभाजन के बिना साहित्य का इतिहास, घटनाओं की अर्थव्यवस्था का समूह है, मनमाना नामकरण साहित्य का दिशाहीन प्रवाह हो जाता।"

साहित्य के काल विभाजन के आधार पर हम उसकी लम्बी यात्रा के विविध पड़ावों को अच्छी तरह समझ सकते है। किसी भी भाषा के साहित्य की बात करे तो वे किसी एक विशेष प्रवृत्ति से, युगीन परिस्थितियों से, काल घटित घटनाओं से या किसी विशेष कारण से प्रभावित होता है तो उसका प्रभाव साहित्य पर पड़ता है। समाज में घटित होने वाली घटनाएँ समाज की परिस्थिति से साहित्य की प्रभान्विति संभव है। वहीं साहित्य किसी युग विशेष की प्रवृत्ति से प्रभावित होता है या उस युग मे कोई महान पुरुष, युग पुरुष अवतरित होता है, तो उससे समाज को नयी दिशा मिलती है उस नयी दिशा से साहित्य भी प्रभावित होता है और उसके द्वारा किए गए कार्यों से साहित्य में भी परिवर्तन होता है, साहित्यिक प्रवृत्तियां, साहित्यिक विकास, साहित्यिक विचारधारा से प्रभावित होकर साहित्य आगे बढ़ता है और इन सभी परिस्थितियों के आधार पर उस काल में रचित साहित्य को एक विशेष नाम दे दिया जाता है।

इस प्रकार साहित्य को एक व्यवस्था प्रदान करने के लिए, एक दिशा देने की लिए आगे चलकर कोई भी अपनी मर्जी से मन-माना नाम न रख दे, काल को कहाँ से कहाँ तक ले जाए यही अव्यवस्था से बचने के लिए, अध्येयता की सुविधा के लिए साहित्य काल विभाजन आवश्यक है।

काल विभाजन के आधार:

काल विभाजन के विभिन्न आधार रहे है। उनमें सबसे पहला आधार है ऐतिहासिक कालक्रम के आधार पर जैसे- आदिकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल, काल विभाजन का दूसरा आधार माना जाता है | शासन व शासनकाल के आधार पर जैसे – एलिजाबेथ युग, विक्टोरिया युग, मराठा युग, तीसरा प्रमुख आधार है। युग प्रवर्तक या प्रमुख साहित्यकारों के आधार पर जैसे- भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, प्रसाद युग आदि नामकरण। समाज में कई महान पुरुष ऐसे हुए जिनसे समाज का दृष्टिकोण प्रवर्तित होता है, जिससे समाज की दिशा

बदलती है उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में ऐसे महान व्यक्ति हुए जिनके द्वारा साहित्य की दिशा और दृष्टिकोण प्रवर्तित हुआ जैसे- महावीर प्रसाद द्विवेदी तत्कालीन समय के साहित्यकारों की भाषा व वर्ण्य विषय संबंधी अनेक नवीन सुधारों के लिए प्रेरित किया उनके द्वारा दिए गए मार्गदर्शन और साहित्य के लिए किए गए अमूल्य कार्य के कारण उनके समय काल को द्विवेदी काल नाम दिया गया। इसी प्रकार भारतेन्दु जी ने कई गद्य विधाओं का निर्माण व विकास किया और साहित्य युग का प्रवर्तन किया यही कारण है कि उनका समय भारतेन्दु युग के नाम से जाना जाता है। मुंशी प्रेमचंद एक ऐसा नाम है जिनके बिना हिन्दी उपन्यास का जिक्र भी नहीं हो सकता क्योंकि प्रेमचंदजी हिन्दी उपन्यास के आधार स्तंभ है यही कारण है कि उपन्यास क्षेत्र में सभी कालों के नाम प्रेमचंदजी के नाम पर ही है- प्रेमचंद युग, प्रेमचंद पूर्व युग और प्रेमचंदोत्तर युग इस प्रकार जब साहित्य कार युग प्रवर्तन कार बनता है या साहित्य को नया रूप प्रदान करता है या उनका साहित्य के लिए अमूल्य योगदान होता है। तब उनका युग उन्ही के नाम से जाना जाता है।

साहित्य में ऐसा नहीं है कि सिर्फ साहित्यकारों के नाम पर ही युग विभाजन या नामकरण हो। नामकरण या युग विभाजन साहित्यिक प्रवृत्तियों और साहित्यिक रचना के आधार पर भी हो सकते है जैसे रीति काल भक्तिकाल, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि

इसीप्रकार व्यक्ति विशेष के नाम पर भी नामकरण हुए है इसके अंतर्गत राजनीतिक नेताओं के आधार पर भी युग का नामकरण हुआ है जैसे- गांधी युग, स्तालिन युग, नेहरू युग आदि।

इन सबके अतिरिक्त अन्य कई विशेषताओं के आधार पर भी काल के नामकरण हुए है जैसे

- राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक आंदोलन के आधार पर भक्तिकाल, पुनर्जागरण काल, सुधार काल
- साहित्यिक प्रवृत्तियों के अनुसार- रीतिकाल, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद

इस प्रकार समय समय पर राष्ट्र में नीहित राजनीतिक सांस्कृतिक, सामाजिक, साहित्यिक परिस्थितियों के आधार पर उस काल विशेष का नामकरण किया गया है

हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रमुख रूप से काल विभाजन और नामकरण साहित्यतिहास अध्ययन का प्रमुख विषय माना जाता है और इस विषय के अध्ययन के पूर्वाधि में कुछ प्रश्न हमारे मस्तिष्क को घेर लेते है जैसे- इतिहासकारों ने कालविभाजन किस प्रकार किया? किन किन रुपों में किया? साहित्य का आरंभ और विकास कब से माना और इस अध्ययन और इस अध्ययन और शोध प्रणाली में प्रमुख रूप से कौनसे साहित्यकारों की प्रमुख भूमिका रही। इन सभी मुद्दों को ध्यान में रखते हुए हिन्दी साहित्य इतिहास के काल विभाजन और नामकरण संबंधी सम्पूर्ण अध्ययन सुलभता से किया जा सकता है।

१.३.१ गार्सा द तासी:

साहित्य इतिहास की लेखन परम्परा में प्रथम नाम गार्सा द तासी का है ये फ्रेंच लेखक थे। इन्होने सर्वप्रथम साहित्य इतिहास संबंधी ग्रंथ की रचना की इस ग्रंथ का नाम था " इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐदुई ऐंदूस्तानी" ग्रंथ जो १८३९ में प्रकाशित हुआ। हालांकि हम इस ग्रंथ

को कालविभाजन के स्वरूप का इतिहास ग्रंथ नहीं कह सकते क्योंकि इस ग्रंथ में कालविभाजन संबंधी किसी भी प्रकार की अवधारणा नहीं है। परंतु इस ग्रंथ में हिन्दी और उर्दू के प्रमुख कवियों का परिचय और उनकी साहित्यिक कृतियों का परिचय दिया है। इनके द्वारा दिया गया वर्णन अंग्रेजी के वर्ण क्रमानुसार लिखा गया है, कवियों के काल क्रमानुसार नहीं। काल विभाजन और युग प्रवृत्तियों की कोई जानकारी इस ग्रंथ में नहीं है किन्तु गार्सा द तासी का यह प्रयास सराहनीय है । अपने देश से बहुत दूर परदेशी व्यक्ति द्वारा हिन्दी साहित्य के इतिहास के अध्ययन की शुरूवात कौतुकास्पद और अभिमानास्पद है। ग्रंथ में कई दोष होते हुए भी यह ग्रंथ इतिहास अध्ययन के मार्ग को अवलंबित करता है जो आलोचक एवं इतिहास कारों के लिए महत्वपूर्ण भूमिका में है। गार्सा द तासी के ग्रंथ में शताब्दी और कवियों के नाम इस प्रकार है:

१. नौवीं शताब्दी – सबसे पहिले हिन्दू कवि

२. बारहवी शताब्दी – चंद पीपा

३. तेरहवी शताब्दी – बैजू बावरा

४. चौदहवी शताब्दी – खुसरो

५. पंद्रहवी शताब्दी – भक्ति संबंधित कवि – गोपालदास, धरमदास, नानक, भोगदास आदि

६. सोलहवी शताब्दी – सुखदेव, नाभाजी, वल्लभ, बिहारी, गंगादास

७. सत्रहवी शताब्दी – सूरदास, तुलसीदास, केशवदास

८. अठारहवी शताब्दी – गंगापति, वीरभान, रामचरण, शिवनारायण

९. उन्नीसवीं शताब्दी – बस्तावर, दुल्हाराम, छत्रदास

१.३.२ शिव सिंह सेंगर:

साहित्य इतिहास में कालविभाजन और नामकरण संबंधित अध्ययन का प्रमुख प्रयास शिवसिंह सेंगर द्वारा हुआ। उन्होंने 'शिवसिंह सरोज' नामक ग्रंथ लिखा इस ग्रंथ की रचना। १८३९ ई. में हुई। यह ग्रंथ दो प्रमुख भागों में प्रकाशित हुआ पहला भाग। १८३९ ई. में और दूसरा भाग १८४७ ई. में। इन दोनों ग्रंथों में हिन्दी के लगभग १००० कवियों का परिचय है लेकिन काल-विभाजन से संबंधित कोई भी जानकारी इस ग्रंथ में नहीं है। इस प्रकार गार्सा द तासी और शिवसिंह सेंगर दोनो विद्वानों के ग्रंथ में काल विभाजन संबंधी अवधारणा का उल्लेख नहीं मिलता, वर्णनानुक्रम साहित्य का उल्लेख मात्र है। क्योंकि तत्कालीन समय में वर्णनानुक्रम साहित्य लिखने का प्रचलन था।

१.३.३ जार्ज ग्रियर्सन:

इस संबंध में तीसरा महत्वपूर्ण ग्रंथ ' एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की पत्रिका के विशेषांक के रूप में सन १८८८ में प्रकाशित हुआ। जिसके लेखक जार्ज ग्रियर्सन है। जार्ज

ग्रिर्यसन ऐसे इतिहासकार माने जाते है जिन्होंने सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य के इतिहास को कालक्रम के अनुसार विभाजित किया है उनकी पुस्तक ' द माडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्तान' है। जार्ज ग्रियर्सन स्वयं मानते है कि उनके सामने अनेक कठिनाईयां थी जिससे वे काल- विभाजन के अध्ययन में पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त नहीं कर सके। इस संबंध में उन्होंने कहा है:- "सामग्री को यथा संभव कालक्रमानुसार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है यह सर्वत्र सरल नहीं रहा है और कतिपय स्थलों पर तो यह असंभव सिद्ध हुआ है।" अधिकांश साहित्येतिहास लेखक मानते है कि जार्ज ग्रिर्यसन द्वारा किया गया काल विभाजन हिन्दी साहित्य का प्रथम काल विभाजन है। इन्होने हिन्दी साहित्य के इतिहास को निम्नलिखित ग्यारह शीर्षक में विभाजित किया है:

१. वीरगाथा काल या चारणकाल (७०० से १३०० ई.)

२. पंद्रहवी शताब्दी का धार्मिक जागरण

३. मालिक मुहम्मद जायसी का प्रेम काव्य

४. ब्रज का कृष्ण- सम्प्रदाय

५. मुगल दरबार

६. तुलसीदास

७. रीतिकाव्य

८. तुलसीदास के अन्य परवर्ती कवि (सन १६०० से १७०० ई.)

(i) भाग-१- धार्मिक कवि

(ii) भाग २- अन्य कवि

९. अठारहवी शताब्दी

१०. कंपनी के शासनकाल में हिन्दुस्तान (सन १८७० से १८५७ ई.)

११. महारानी विक्टोरिया के शासनकाल में हिन्दुस्तान (सन १८५७-१८८७ ई.)

इस प्रकार जार्ज ग्रिर्यसन ने काल-विभाजन का प्राथमिक प्रयास किया है। यदि हम इसका सूक्ष्म अध्ययन करते है तो पाते है कि इस काल विभाजन में एकरूपता नहीं है जो नामकरण हुए है वे भी भिन्न-भिन्न आधारों पर हुए है जैसे कभी समय के आधार पर, कभी कवि की काव्यगत विशेषता के आधार पर तो कभी कवि के आधार पर, कभी राजनीतिक दृष्टि से रानी विक्टोरिया के शासन काल या कम्पनी के काल में हिन्दुस्तान को काल विभाजन का आधार बना लेते है। इनके द्वारा साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर काल विभाजन नहीं किया गया है जो तथ्यहीन है जिससे किसी प्रकार की साहित्यिक प्रवृत्ति का बोध नहीं होता और किसी भी प्रकार की एकरूपता नहीं दिखती लेकिन प्रथम प्रयास के रूप में यह काल विभाजन सराहनीय है इसके अध्ययन से अन्य साहित्यकारों को प्रेरणा मिली और काल विभाजन संबंधी अवधारणा को गति मिली।

१.३.४ मिश्रबधू:

जार्ज ग्रियर्सन के पश्चात प्रमुख रूप से काल विभाजन का प्रयास मिश्र बंधुओं द्वारा हुआ। इनके द्वारा रचित ग्रंथ 'मिश्र बन्धु विनोद' है जो चार भागों में विभाजित है। इस ग्रंथ में पांच हजार कवियों के जीवन परिचय और साहित्यिक परिचय है। इनके द्वारा किया गया काल विभाजन उपयोगी है जो प्रत्येक दृष्टि से ग्रियर्सन के काल विभाजन का विकसित रूप कहा जा सकता है। मिश्र बन्धु द्वारा किया गया काल विभाजन इस प्रकार है:

१. आरंभिक काल: (i) पूर्वारम्भिककाल (६७०-१३४३ वि.)

(ii) उतरारम्भिक काल (१३४४-१४४४ वि.)

२. माध्यमिक काल: (i) पूर्व माध्यमिक काल (१४४५-१५६० वि.)

(ii) प्रौढ़ माध्यमिक काल (१५६१-१६८० वि.)

३. अलंकृत काल: (i) पूर्वालंकृत काल (१६८१-१७९० वि.)

(ii) उत्तरालंकृतकाल (१७९१-१८८९ वि.)

४. परिवर्तन काल: (१८९०-१९२५ वि.)

५. वर्तमान काल: (१९२६ से अबतक)

यदि मिश्रबंधु द्वारा किए गए काल विभाजन का मूल्यांकन किया जाए तो इनके द्वारा किया गया काल विभाजन अधिक विकसित और तर्कसंगत है क्योंकि कालों के नाम साहित्यिक और समय के आधार पर दिए गए है जो वैज्ञानिकता का बोध कराते है। लेकिन नामकरण में एक रूपता नजर नहीं आती वहीं नामकरण की प्रणाली को अधिक लम्बा कर दिया है, पाँच खण्डो में विभाजित करने के बाद भी उसके उपभाग कर दिये है। आरम्भिक काल ७०० वि.सं. से माना है और इस काल में जो रचनाएं हुई वे सभी अधिकांश अपभ्रंश भाषा में हुई और अपभ्रंश भाषा के साहित्य को हिन्दी साहित्य के साथ जोड़ना उचित प्रतीत नहीं होता यदि इस काल विभाजन में दूसरी त्रुटि देखी जाए तो कालों की समयावधि की है जैसे १३४४ के बाद दूसरा काल १३४५ कर दिया परंतु एक वर्ष की कालावधि में भाषा परिवर्तन नहीं हो सकता। कालगत विशेष प्रवृत्ति को बदलने में समय लगता है एक साल में परिवर्तन संभव नहीं है।

मिश्र बन्धुओ द्वारा किए गए काल विभाजन में अनेक त्रुटियाँ होते हुए भी यह कालविभाजन साहित्यिक विकासावस्था का द्योतक है और इसके बाद जो इतिहासकार हुए उनके लिए यह काल विभाजन नीव का पत्थर साबित हुआ है ।

१.३.५ आचार्य रामचंद्र शुक्ल:

आचार्य रामचंद्र शुक्लजी ने काशी नागरी प्रचरिणी सभा से प्रकाशित हिन्दी शब्दसागर की भूमिका में कालविभाजन की चर्चा की है यह शब्दसागर १९२९ में प्रकाशित हुआ इसमें आचार्यजी ने हिन्दी साहित्य के नौ सो वर्षों के साहित्य को चार भागों में विभाजित किया है।

इनके द्वारा किया गया काल विभाजन सरल स्पष्ट और सुबोध है और अब तक के सभी इतिहासकारों के कालविभाजन में सर्व मान्य और सर्वत्र प्रचलित है। शुक्लजी द्वारा किया गया काल विभाजन इस प्रकार है:

१. आदिकाल (वीरगाथा काल): वि.सं. १०५० से १३७५ तक

२. भक्तिकाल (पूर्व मध्यकाल): वि.सं.१३७५ से १७०० तक

३. रीतिकाल (उत्तरमध्यकाल): वि.सं. १७०० से १९०० तक

४. आधुनिक काल (गद्यकाल): १९०० से अबतक

शुक्लजी द्वारा किए गए कालविभाजन का यदि मूल्यांकन किया जाए तो यह कह सकते है कि पूर्ववर्ती साहित्यकारों की अपेक्षा यह काल विभाजन अधिक परिष्कृत और वैज्ञानिक मापदंडों मे औचित्यपूर्ण है। लेकिन शुक्ल जी ने कालविभाजन का मापदंड तय करते समय मिश्रबंधु और जार्ज ग्रियर्सन द्वारा किए गए काल विभाजन को सामने रख अपना मत प्रस्तुत किया है और उक्त गहन अध्ययन के द्वारा सुधारित काल विभाजन प्रस्तुत किया।

इस सुधारित आवृत्ती के बावजूद भी शुक्लजी द्वारा किये गये कालविभाजन में कुछ त्रुटियाँ है शुक्लजी ने अपभ्रंश भाषा के साहित्य को हिन्दी साहित्य का आदिकाल माना है। इसके अतिरिक्त आदिकाल को वीरगाथा काल नाम दिया है जबकि वीरकाव्य से संबंधित आदिकाल की कई रचनाओं के होने का कोई सबल प्रमाण नहीं है। इसी प्रकार मध्यकाल को उत्तर मध्यकाल और पूर्वमध्यकाल नाम दिया है वहीं आधुनिक काल के विभाजन का भी साहित्यकार विरोध करते है। लेकिन ये सभी त्रुटि नगण्य है और विद्वानों, पाठकों द्वारा सर्वाधिक मान्यता शुक्लजी द्वारा किए गए कालविभाजन को मिली है।

१.३.६ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी:

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीजी ने आचार्य शुक्लजी द्वारा किए गए काल विभाजन का प्रबल विरोध किया है। इन्होंने अपने ग्रंथ हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास में जो काल विभाजन किया है वह ईसवी सन् के आधार पर किया है। आचार्य द्विवेदीजी ने हिन्दी साहित्य के काल को चार भागों में विभाजित किया है।

१. आदिकाल: समय: १००० ई. - १४०० ई.तक

२. पूर्वमध्यकाल: १४०० ई. - १७०० ई. तक

३. उत्तर मध्यकाल: १७०० ई. - १९०० ई. तक

४. आधुनिक काल: १९०० ई. - से अब तक

इस प्रकार द्विवेदीजी द्वारा किये गये कालविभाजन का मूल्यांकन करने से हमे ज्ञात होता है कि उन्होंने विक्रमी संवत् के स्थान पर ईसवी सन का प्रयोग किया है। दूसरा महत्वपूर्ण कारण द्विवेदीजी ने काल विभाजन का आधार पूरी शताब्दी को माना है क्योंकि कोई भी बदलाव वर्ष या वर्षों में नहीं होते २०-२५ वर्ष की अवधि में कोई परिवर्तन संभव हो सकता

है । वहीं द्विवेदीजी के काल विभाजन में वीरगाथा काल को आदिकाल नाम दिया गया है जिसे सभी साहित्यकारों – इतिहासकारों की स्वीकृति मिली इस प्रकार एक दो मुद्दों को छोड़कर बाकी सभी मुद्दे शुक्लजी द्वारा किये गये कालविभाजन की तरह ही है।

१.३.७ डॉ. रामकुमार वर्मा:

डॉ. रामकुमार वर्माजी द्वारा लिखित पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में काल विभाजन व नामकरण इस प्रकार है।

१. संधिकाल: वि.सं. ७५० से १००० तक

२. चारणकाल: वि.सं. १००० से १३७५ तक

३. भक्तिकाल: वि.सं.१७०० से १९०० तक

४. रीतिकाल: वि.सं. १९०० से अब तक

इस प्रकार रामकुमार वर्माजी ने प्रथमकाल अर्थात आदिकाल को संधिकाल नाम दिया है साथ ही आदिकाल को दो भागों में विभाजित कर दिया पहला संधिकाल और दूसरा चारणकाल । आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य इतिहास का प्रारंभ १००० वि.सं. से माना हैं परंतु डॉ. रामकुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य इतिहास की शुरुवात ३०० वर्ष पहले करके उसे संधिकाल नाम दे दिया इस प्रकार वर्माजी द्वारा भी अपभ्रंश भाषा का साहित्य समावेश भी हिन्दी साहित्य में मान लिया। और द्विवेदी शुक्लजी ने जिन कालों को पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल नाम दिया था इन कालों को वर्माजी ने भक्तिकाल और रीतिकाल नाम दिया । शुक्लजी ने पूर्वमध्यकाल अर्थात भक्तिकाल का विभाजन निर्गुण भक्ति शाखा और सगुण भक्ति शाखा के रूप में करते है वही राम कुमार वर्मा भक्तिकाल का विभाजन संतकाव्य धारा और प्रेम काव्याधरा के रूप में करते है। इस प्रकार इनके नामकरण शुक्लजी के नामकरण से भिन्न है । इसके अतिरिक्त वर्माजी का ७०० वि.सं. से हिन्दी साहित्य काल का प्रारंभ होना परवर्ती इतिहासकारों, साहित्यकारों द्वारा स्वीकार्य नहीं है। साहित्यिक आचार्य विद्वान १००० वि.सं. से ही हिन्दी साहित्य का आरंभ मानते है।

१.३.८ डॉ. नगेन्द्र:

डॉ. नगेन्द्र के कालविभाजन लेखन की प्रमुख विशेषता यह है कि इनके द्वारा लिखा गया हिन्दी साहित्य का इतिहास संपादित स्वरूप का इतिहास है । इसमे विभिन्न लेखकों साहित्यकारों के विचार व लेख संपादित है। इनके द्वारा किया गया कालविभाजन इस प्रकार है।

१. आदिकाल : ७ वी सदी से १४ वी सदी के मध्य तक

२. भक्तिकाल : १४ वी सदी के मध्य से १७ वी सदी के मध्य तक

३. रीतिकाल : १७ वी सदी के मध्य से १९ वी सदी के मध्य काल

४. आधुनिक काल:१९ वी सदी के मध्य से अब तक

डॉ. नगेन्द्र द्वारा किए गए काल विभाजन का यदि हम मूल्यांकन करें तो देखते है कि उन्होंने हिन्दी साहित्य का आरंभ ७ वी शताब्दी से माना है और इसके अतिरिक्त विभिन्न काल खंडो का नामकरण द्विवेदीजी द्वारा किए गए नामकरण के अनुसार ही है। डॉ. नगेन्द्र द्वारा किए गए कालखंड संपूर्ण शताब्दी के अनुसार सदियों पर आधारित है जो वैज्ञानिक जान पड़ता है।

१.३.९ गणपति चंद्र गुप्त:

हिन्दी साहित्य के कालविभाजन व नामकरण की विस्तृत चर्चा गणपती चंद्र गुप्तजी ने की है। उनके द्वारा लिखित ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' में वैज्ञानिक मूल्यांकन को आत्मसात कर कालविभाजन किया गया है । इनके द्वारा किया गया कालविभाजन इस प्रकार है :

१. प्रारंभिक काल : सन ८८४ से १३५० ई. तक

२. मध्यकाल : (i) पूर्व मध्यकाल – सन १३५० से १५०० तक

(ii) उत्तर मध्यकाल – सन १५०० से १८७५ तक

(iii) आधुनिक काल – सन् १८५७ से आज तक

गणपती चंद्र ने मध्यकाल की तरह आधुनिक काल को भी कई भागों में विभाजित किया है और आधुनिक काल का समय १८५७ ई. स से १९६५ ई. स. तक ही मानते है इस प्रकार गणपती चंद्र गुप्त द्वारा किया गया काल विभाजन त्रुटि पूर्ण है और मध्यकाल का अनायास विभाजन उचित नहीं है और इतिहासकारों व साहित्यकारों को भी यह मान्य नहीं है।

इस प्रकार कालविभाजन और नामकरण की प्रक्रिया में आधुनिक काल के काल विभाजन इस प्रकार है :

भारतेन्दु युग – १८५७ ई. से १९०० तक

द्विवेदी युग – १९०० ई. स.से १९२० तक

छायावादयुग – १९२० ई. स. से १९४५ तक

प्रगतिवादी युग – १९३५ ई. स. से १९४५ तक

प्रयोगवादी युग – १९४५ ई. स. से १९६५ तक

यह सभी वर्गीकरण आधुनिक युग के है। उक्त वर्गीकरण में एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि आदिकाल, रीतिकाल और मध्यकाल आदि कालविभाजन शताब्दी में हुए इन कालों का समय २०० से ३०० और कई विद्वानों ने ४०० वर्ष भी तय किया है। वहीं आधुनिक काल के संदर्भ में काल विभाजन संबंधी अध्ययन करते है तो हमें ज्ञात होता है कि एक-दो दशक में ही काल विभाजन हुआ है। शतकों से दशकों तक का परिवर्तन कैसे हुआ इसका कारण है

आधुनिक काल में विज्ञान व तंत्रज्ञान में बहुत तरक्की हुई साथ ही पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में बढ़ोत्तरी हुई, मिडिया व जनसंचार माध्यमों का विस्तार हुआ। साहित्यकारों को लेखन के अनेक अवसर मिलने लगे। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्तर पर परिवर्तन शीघ्र अति शीघ्र हुए जिसके फलस्वरूप साहित्य की दिशा व दशा भी अल्पकालवधि में परिवर्तित होती गयी।

१.४ सारांश

हिन्दी साहित्य का इतिहास काल विभाजन और नामकरण के अध्ययन के बिना अपूर्ण है। इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी काल विभाजन और नामकरण के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों के मत का मूल्यांकन सहित अभ्यास कर सके, साथ ही साहित्य इतिहास में भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के मत को स्पष्ट रूप से समझ सके।

१.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. साहित्य-इतिहास को स्पष्ट करते हुए इस संबंध में भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।

२. हिन्दी साहित्य के काल विभाजन और नामकरण को रेखांकित कीजिए।

३. काल विभाजन संबंधी सभी प्रमुख विद्वानों द्वारा दिए गए मत पर सविस्तार चर्चा कीजिए।

४. हिन्दी साहित्य का कालविभाजन व नामकरण का विविरण देते हुए, नामकरण की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

१.६ लघूत्तरीय प्रश्न

१. हिन्दी साहित्य के काल विभाजन का सर्वप्रथम प्रयास किसने किया?

उत्तर: फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी

२. किस विद्वान लेखक के कालविभाजन को प्रथम काल विभाजन माना जाता है?

उत्तर: जार्ज ग्रियर्सन

३. हिन्दी साहित्य के काल विभाजन व नामकरण की शृंखला में सबसे सुगम और उपयुक्त नामकरण किस विद्वान का माना जाता है?

उत्तर: आचार्य रामचंद्र शुक्ल

४. डॉ. रामकुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य के काल विभाजन को कितने भागों में बाँटा है?

उत्तर: पाँच

५. आचार्य शुक्ल वीरगाथा काल का प्रारंभ कब से माना है?

उत्तर: ई. स. १०५० से

१.७ संदर्भ पुस्तकें

- हिंदी साहित्य का इतिहास - आ. रामचंद्र शुक्ल
- हिंदी साहित्य का इतिहास - सम्पादक डॉ. नगेन्द्र
- हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशन प्रसाद

*****

२

आदिकालीन हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि

इकाई कि रूपरेखा

२.० इकाई का उद्देश्य

२.१ प्रस्तावना

२.२ आदिकालीन हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि

- २.२.१ राजनीतिक परिस्थितियाँ
- २.२.२ सामाजिक परिस्थितियाँ
- २.२.३ धार्मिक परिस्थितियाँ
- २.२.४ साहित्यिक परिस्थतियाँ
- २.२.५ सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

२.३ सारांश

२.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

२.५ लघुत्तरीय प्रश्न

२.६ संदर्भ पुस्तकें

२.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी निम्न लिखित मुद्दों को समझ सकेंगे।

- आदिकालीन परिवेश की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों को समझ सकेंगे।

२.१ प्रस्तावना

साहित्य और समाज में प्रगाढ़ संबंध होता है। किसी भी प्रकार का साहित्य सामाजिक चेतना का विकास अंकित करता है क्योंकि साहित्य का समाज की तत्कालीन परिस्थिति से जुड़ना मानवीय मनोभाव का दृष्टिकोण स्पष्ट करता है क्योंकि परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में ही साहित्य रचना संभव है। यही तत्व तत्कालीन समाज का और तत्कालीन साहित्य का प्रतिबिम्ब है।

२.२ आदिकालीन हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि

साहित्य के १० वी शताब्दी से १४ वी शताब्दी तक रचित साहित्य को आदिकालीन साहित्य माना जाता है। इस काल में जो साहित्य लिखा गया उस साहित्य में अपभ्रंश भाषा

से विकसित होकर खड़ी बोली भाषा का स्पष्ट रूप आदिकालीन साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता है।

साहित्य सामाजिक चेतना का विकास अंकित करता है क्योंकि साहित्य समाज की तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित होता है । साहित्य को आधार मानकर युगीन परिस्थितियों का अंदाज आसानी से लगाया जा सकता है । क्योंकि परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में ही साहित्य रचना संभव है । यही तत्व, तत्कालीन समाज का तत्कालीन साहित्य का प्रतिबिम्ब है। यही प्रतिबिम्ब आदिकालीन साहित्य की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों के अध्ययन की प्रेरणा हमें देता है।

२.२.१ राजनीतिक परिस्थितियाँ:

आदिकाल का समय राजनीतिक दृष्टि से पराजय काल माना जाता है | आपसी मतभेद, गृह कलह पारस्परिक द्वेष की भावना आदि कारणों से देश खोखला होता जा रहा था । उत्तर भारत में हर्षवर्धन का साम्राज्य सबसे अधिक शक्तिशाली था उनके शासनकाल में ही भारत की सीमा पर यवनों हूणों और शकों के आक्रमण होने लगे थे उनका सामना करते करते ही हर्षवर्धन का साम्राज्य कमजोर होने लगा | सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु से उत्तरी भारत में केन्द्रीय भावना का ह्रास बढ़ता गया दूसरी ओर पूर्व में विदेशी आक्रमण, इस्लाम का बढ़ता हुआ वर्चस्व और ब्राह्मण राजाओं के व्यवहार से असंतुष्ट जाट और अन्य समाज आक्रमण कारियों के साथ जा मिले। आपसी रंजिशों और बढ़ते मनमुटाव के कारण कई वीर, महान राजाओं को भी मुहँकी खानी पड़ी । मुहम्मद गजनबी ने गुजरात और राजस्थान की ओर राज्य विस्तार किया । ११ वी- १२ वी सदी में दिल्ली में तोमर अजमेर में चौहान और कन्नोज में गहड़वालों का शक्ति साम्राज्य स्थापित हो चुका था । पृथ्वीराज चौहान विदेशी आक्रमणों के प्रति पूर्ण सजग नहीं थे उन्होंने मुहम्मद गौरी को रोकने का कोई भरसक प्रयास नहीं किया और अन्त: कन्नोज के राजा जयचंद राठोड के षडयंत्र के कारण पृथ्वीराज चौहान मुहम्मद गौरी से युद्ध हार गये | इसी प्रकार सभी प्रमुख राज्यों का पतन हो गया और सम्पूर्ण उत्तरी भारत में मुस्लिम पताका पहराने लगी। इस प्रकार आठवी से पंद्रहवी शताब्दी तक का भारतीय इतिहास देखे तो राजनीतिक परिवेश में हिन्दू साम्राज्य समाप्त होने लगा। इसीलिए राजनीतिक दृष्टि से इस काल को पतन का काल कहा जाता है। मुस्लिम आक्रमण का अधिक आक्रोश मध्यभारत को झेलना पड़ा क्योंकि यहीं के राजाओं ने आक्रमण कारियों का सर्वाधिक विरोध किया था।

इस प्रकार तत्कालीन राजनीतिक परिवेश आपसी मन मुटाव, पड़ोसी राज्य के प्रति उदासीनता, पद लोलुपता, धन की लालसा आदि के कारण देश पतन की ओर उन्मुख था। राजाओं की वर्चस्वता उनके सर्वेसर्वा होने का प्रमाण देता है | राजा की आज्ञा का पालन करने हेतु प्रत्येक व्यक्ति मर मिटने को तैयार था । उचित-अनुचित जाने बिना इस प्रकार जनता में राजनीतिक चेतना का अभाव था।

२.२.२ सामाजिक परिस्थितियाँ:

आदिकाल के समय समाज असमानताओं से जकड़ा हुआ था। जातिवाद परम सीमा पर था । जातियाँ उपजातियों में विभाजित हो रही थी । समाज रूढ़ियों-परम्पराओं से ग्रस्त था ।

स्त्रियों कि स्थिति दयनीय थी। वह मात्र भोग की वस्तु बनकर रह गयी थी और इससे भी आगे वह क्रय-विक्रय का साधन बन चुकी थी। राजपूत, सामंती आदि वंश कुलीनता का बोलबाला था। शौर्य में राजपूत स्त्रीयाँ किसी से कम नहीं थी। स्वयंवर प्रथा इस युग की विशेषता थी। राजाओं का अधिकांश समय अपनी पत्नी, उप पत्नीयां व रक्षिताओं के साथ रंग रलियों में व्यतीत होता था। राज परिवार में भाषागत, राजनीति, तर्कशास्त्र, काव्यशास्त्र, गणित, नवरस मंत्र वशीकरण आदि की शिक्षा रीति-नीति के अनुसार दी जाती थी। वहीं सामान्य वर्ग शिक्षा से दूर था वह अपने आजीविका के साधन जुटाने में लगा हुआ था। निर्धनता बढ़ती जा रहा था। सतीप्रथा जैसी कुपरम्परा चरमोत्कर्ष पर थी। राजपूतों में स्वाभिमान कि कमी थी। सुज्ञा से जुड़े सामंत और व्यापारी वर्ग के लोग सुखी और संपन्न थे। समाज पर अनेक प्रकार के साधु-सन्यासियों का प्रभाव होने के कारण जनता में अंधविश्वास, शाप, वरदान जैसे तत्व प्रसारित थे लेकिन इस व्यवस्था से कुछ सिद्ध-साधक विरोधी भी थे जो समाज में समानता और सुधार के पक्षधर थे।

२.२.३ धार्मिक परिस्थितियाँ:

इस युग में सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति की भाँति धार्मिक परिस्थिति भी अराजकतापूर्ण थी। धर्म में आडम्बर का बोलबाला था। लगभग सातवी शताब्दी तक भारत का धार्मिक परिवेश शांत और सद्भावना पूर्ण था। परंतु सातवी शताब्दी के बाद धर्म अपने वास्तविक परिवेश से हट चुका था क्योंकि धर्म के अनेक सम्प्रदाय और उपसंप्रदायों का निर्माण अब तक हो चुका था। वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म आदि धर्म उपसंप्रदाय में विभक्त हो गये। और यह संप्रदाय धर्म के मूलरूप को भूलकर, अघोरी प्रवृत्ति आदि आडम्बरों में प्रवृत्त होते जा रहे थे। इस प्रकार के आडम्बरों को वाम साधना कहते थे। इसके अतिरिक्त मुद्रा साधना करना, स्त्री का भोग करना और स्त्री भोग काम वासना को भी साधना का एक अंग मानना इस प्रकार के कर्म काण्ड से धर्म का स्वरूप विकृत हो चुका था। वैदिक धर्म जो सनातन काल से चला आ रहा था उसमें भी कर्म काण्डों का बाहुल्य हो गया तब जब बौद्ध धर्म और जैन धर्म आये प्रारंभ में इन धर्मो ने सदाचार निभाया लेकिन आगे चलकर विकृत हो गये इन धर्मो में हीनयान, महायान, बज्रयान जैसे उपसम्प्रदाय बने। उनमें मठों की परम्परा पनपने लगी, बड़े बड़े मठ बनाये गये ये मठ राज्याश्रित थे उन मठों में व्यभिचार बढ़ने लगा | पंचमकार और काय-साधना जैसे प्रकार मठों में नित्य कर्म रूप में किये जाने लगे इस प्रकार इन मठों का वास्तविक स्वरूप विलुप्त होने लगा इससे जन सामान्य में भय और अविश्वास पनपने लगा। विभिन्न सम्प्रदायों के योगी चमत्कार सिद्धियों दिखाकर भोली-भाली जनता को फँसाने का कार्य करते बौद्ध धर्म को पश्चिम बंगाल में पालवंशीय व गोड वंशीय राजाओं का प्रश्रय मिला। इसके फलस्वरूप पश्चिम बंगाल में सिद्ध साहित्य की फलश्रुति हुई। दक्षिण भाग में वैदिक धर्म पनपता रहा क्योंकि दक्षिण भाग विदेशी आक्रमणों से अछूता था। वैदिक धर्म को पूर्वी बंगाल, मालवा और मध्यप्रदेश के राजाओं ने आश्रय दिया तो इसके फलस्वरूप वैदिक धर्म यहाँ विकसित हुआ। दक्षिण भारत से और द्रविड़ प्रदेशों से भक्ति का आविर्भाव हुआ।

गुजरात और राजस्थान में जैन धर्म को आश्रय मिला लुइपा, कडप्पा, राष्ट्र कूट जैसे गुजराती राजाओं से आर्थिक सहयोग पाकर जैन कवियों ने जैन धर्म ग्रंथ का प्रणयन किया। जो जैन काव्य रचा गया वह चरित काव्य, पुराणों आदि से प्रेरित था। इन्होने 25 तीर्थंकर

और उनके द्वारा किए गये कार्यो का वर्णन अपनी रचना में किया। इसी प्रकार वैदिक धर्म ग्रंथ भी इनकी रचनाओं का आधार था। राम और कृष्ण की कथा भी जनमानस को प्रभावित करने के लिए रची। जैन कवियों ने राजा दशरथ और राजा राम को जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण करते हुए बताया है। साथ ही जैन कवियों ने रासो काव्य की रचना की इन रचनाओं में उन्होंने अपने अनुयायियों का वर्णन किया है, ये सभी रचनाएं अपभ्रंश भाषा में है।

इस प्रकार यह काल हिन्दू धर्म मे पतन का और मुस्लिम धर्म के विकास का काल है। आदिकाल धार्मिक दृष्टि से बाह्य देश से मुगल आये वे अपने नये धर्म को लेकर आये। इस प्रकार देश का मूल धर्म क्षति की ओर था, अंधविश्वास फेल रहा था। जनमानस में क्षोभ था, आडम्बर कर्मकाण्ड बढ़ने लगे | सभी धर्म अपनी मूल चेतना से भटककर कर्मकाण्ड में लग गये इस प्रकार धार्मिक परिस्थिति समय और धर्म के अनुकूल नहीं थी।

२.२.४ साहित्यिक परिस्थितियाँ:

आदिकाल में प्रमुखत: साहित्य की तीन धाराएं प्रचलित रही जिनका प्रमुख आधार भाषा है इन धाराओं में सबसे प्रमुख धारा थी संस्कृत साहित्य की धारा थी। ९ वी से ११ वी शताब्दी तक कन्नौज और काश्मीर में पर्याप्त मात्रा में संस्कृत साहित्य रचा गया। काव्य शास्त्र के आचार्य विश्वनाथ, कुन्तक, क्षेमेन्द्र, अभिनव गुप्त, भोजदेव मम्मट आदि विद्वानों द्वारा विभिन्न सिद्धांतो की परम्परा का इस शताब्दी में पर्याप्त विकास हुआ। दर्शन के क्षेत्र में शंकराचार्य जो वैदिक धर्म उत्थान के प्रवर्तक माने जाते है उनसे साथ कुमारिल भट्ट भास्कर, राजुल्र आदि दर्शन आचार्यों ने भी दर्शन साहित्य का पर्याप्त विकसित किया। इसके अतिरिक्त भवभूति, श्री हर्ष, जयदेव आदि कवियों ने उत्कृष्ठ रचनाएं की। संकेत भाषा के साथ प्राकृत, अपभ्रंश और पाली भाषा में बौद्ध धम्म के अनुसरण में काव्य रचा गया वहीं प्राकृत भाषा में जैन साहित्य और अपभ्रंश भाषा में सिद्ध साहित्य की रचना हुई। ११ वी-१२ वी शताब्दी की अधिकांश रचनाएँ अपभ्रंश भाषा में थी। आदिकाल में एक और धारा प्रवाहित थी चारण एवं भाट कवियों की जिन्होंने वीर काव्य की रचना की | पुराण चरित काव्य, रासो काव्य नीतिपरक काव्यों की रचना इसी काल में हुई।

२.२.५ सांस्कृतिक परिस्थितियाँ:

आदिकाल को सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाए तो यह काल संक्रमणकाल माना जाएगा। हिन्दू संस्कृति जो वैदिक काल से चली आ रही थी वही संस्कृति मुगलकाल में हासता की ओर बढ़ती है। क्योंकि इस्लामी संस्कृति का विकास भारत देश में हो रहा था ये दोनो संस्कृति एक दूसरे के विपरीत थी इसी कारण दोनो संस्कृति का टकराव मनमुटाव बढ़ाने वाला था। लेकिन मुगलों का दीर्घकाल तक भारत देश में साम्राज्य स्थापित होने के बाद जब बाबर, हिमायूं, जहांगीर आदि राजाओं का जन्म भारत देश में हुआ तो उनके स्वभाव की नम्रता ने दोनो संस्कृतियां जुड़ने का प्रयत्न होने लगा। आगे चलकर संगीत, कला, चित्रकला, स्थापत्य कला आदि क्षेत्रों में हम दोनो संस्कृतियों में अपनी मेलजोल की प्रचीति देख सकते है। संगीत के क्षेत्र में कव्वाली, गजल, सूफी संगीत आदि का संबंध इस्लामी संस्कृति से होते हुए भी हर एक भारतीय के दिल में अपनी पसंद के अनुसार जगह बनाली है। वाद्ययंत्र जैसे तबला, तुरई आदि भी एक दूसरे के संस्कृति में अपने से लगते है। इस प्रकार

का मेल-जोल देखकर अरब इतिहासकार अलबरूनी भी आश्चर्य चकित हो कहते है:- "वे (हिन्दू) कला के अत्यंत उच्च सोपान पर आरोहन कर चुके है। हमारे लोग (मुसलमान) जब उनके मंदिर आदि को देखते है आश्चर्य चकित रह जाते है। वे न तो उनका वर्णन ही कर सकते है न वैसा निर्माण कर सकते है। इस प्रकार के विचारों को पढ़कर या सुनकर हम कह सकते है स्थापत्य कला विकसित थी लेकिन इस्लामी धर्म मूर्ति विरोधी होने के कारण स्थापत्य कला में जितना चाहिए उतना विकास नहीं हुआ। हम कह सकते है कि तत्कालीन समय की सांस्कृतिक परिस्थिति उस समय व्याप्त धर्म पर आधारित थी।

२.३ सारांश

आदिकालीन भारतीय समाज राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों में संक्रमण का ही काल था। इसके दीर्घ अध्ययन के उपरांत हम कह सकते है कि भारत वर्ष में आदिकालीन समयकाल परिस्थिति के प्रतिकूल था यहीं से सभी क्षेत्रों में स्तर गिरता गया और समाज की पराजय का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा।

२.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. हिन्दी साहित्य के आदिकालीन परिवेश पर प्रकाश डालिए।

२. आदिकालीन पृष्ठभूमि का साहित्य पर क्या प्रभाव पड़ा विस्तृत विवरण दीजिए।

२.५ लघुत्तरीय प्रश्न

१. आदिकालीन साहित्य में प्रथम धारा में कौनसी भाषा साहित्यिक भाषा रही?

उत्तर: संस्कृत

२. बौद्ध धर्म कौनसे दो भागों में विभाजित हुआ?

उत्तर: हीनयान और महायान

३. जैन धर्म में कौनसे हिन्दू देवता को जैन धर्म की दीक्षा लेते हुए वर्णित किया गया है?

उत्तर: श्री राम

४. ११ वी – १२ वी शताब्दी में दिल्ली में किसकी सत्ता थी?

उत्तर: तोमर वंश

५. आचार्य राम चंद्र शुक्ल ने आदिकाल को क्या नाम दिया है?

उत्तर: वीरगाथा काल

२.६ संदर्भ पुस्तकें

- हिंदी साहित्य का इतिहास - आ. रामचंद्र शुक्ल
- हिंदी साहित्य का इतिहास - सम्पादक डॉ. नगेन्द्र
- हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशन प्रसाद

*****

२.१

सिद्ध, नाथ, जैन एवं रासो साहित्य की विशेषताएँ

इकाई की रुपरेखा

२.१.० इकाई का उद्देश्य

२.१.१ प्रस्तावना

२.१.२ सिद्ध साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ

२.१.३ नाथ साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ

२.१.४ जैन साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ

२.१.५ रासो साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ

२.१.६ सारांश

२.१.७ लघुत्तरीय प्रश्न

२.१.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

२.१.९ संदर्भ ग्रंथ

२.१.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में निम्नलिखित बिंदुओं का छात्र अध्ययन करेंगे।

- सिद्ध साहित्य की विशेषताओं से छात्र परिचित होंगे।
- नाथ और जैन साहित्य का अध्ययन करेंगे।
- रासो साहित्य की प्रमुख विशेषताओं को समझ जायेंगे।

२.१.१ प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में सर्वप्रथम प्रस्तुत किये गए काल को आदिकाल कहाँ जाता है। आदिकाल को वीरगाथा काल, चारण काल, सिद्ध सामन्त युग, बीजवपन काल, वीरकाल, चारण काल या संधि काल, आरम्भिक काल आदि कई नामों से पहचाना जाता है। हिंदी साहित्य के आदिकाल की सामग्री में 'उत्तर अपभ्रंश' की सभी रचनाये आती है। हिंदी साहित्य का आरंभ सिद्धों की रचनाओं से आरंभ मानना युक्तिसंगत रहेगा। सिद्धों की वस्तु-दृष्टि धार्मिक चेतना पर आधारित रही है। इसीलिए उनका सीधा संबंध 'नाथ साहित्य' से होता है। वस्तुतः आदिकाल के अंतर्गत सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य, जैन साहित्य और रासो साहित्य का निर्माण हुआ। इसका विस्तृत अध्ययन करना आवश्यक है।

२.१.२ सिद्ध साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ

सिद्ध साहित्य:

भारतीय साधना के इतिहास में ८वीं शती में सिद्धों की सत्ता रही है। सिद्ध साहित्य को बौद्ध धर्म की घोर विकृति माना जाता हैं। बुद्ध का निर्वाण ४८३ ई. पू. में हुआ। उनके निर्वाण के ४५ वर्ष पश्चात बौद्ध धर्म के सिद्धांतों का खूब प्रचार हुआ। इस धर्म की विजय पताका देश तथा विदेशों में बजती रही। बौद्ध धर्म का उदय वैदिक कर्मकांड की जटिलता एवं हिंस्सा की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। यह धर्म सहानुभूति और सदाचार के मूल तत्वों पर आधारित है। ईसा की प्रथम शताब्दी में बौद्ध धर्म 'महायान' और 'हीनयान' आदि दो शाखाओं में विभाजित हुआ था। महायानी 'बड़े रथ के आरोही रहे' और हीनयान 'छोटे रथ के आरोही थे।' हीनयान शब्द का प्रयोग महायान संप्रदाय की ओर से व्यंग्यात्मक रूप में हुआ। हीनयान में सिद्धांत पक्ष का प्राधान्य रहा जबकि महायान में व्यवहारिकता का। महायान वाले ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, साधु-सन्याशी सबको बैठाकर निर्वाण तक पहुँचा सकने का दावा करते थे। हीनयान केवल विरक्तों और सन्यासियों को आश्रय देता था। बौद्ध धर्म को गुप्त नरेशों के समय में बहुत आघात पहुँचा था। आचर्य की बात है कि भारत का धर्म भारत से निर्वासित हो गया। अब यह धर्म शैव धर्म से प्रभावित हुआ और इसने जनता को अपने आश्रय में लाने के लिए तंत्र-मंत्र एवं अभिचार का आश्रय लिया। जो धर्म, वैदिक धर्म की कर्मकाण्ड की उलझनों की प्रतिक्रिया में उठा था वही समाधि, जंत्र-तंत्र, डाकिनी-शाकिनी, भैरवी-चक्र, मद्य-मैथुन में उलझ गया और सदाचार से हाथ धो बैठा। जिस धर्म ने ईश्वर का अस्तित्व तक का स्वीकार नहीं किया था, कालांतर में उसी में बुद्ध की भगवान के रूप में पूजा होने लगी और आगे चलकर तंत्र से इस धर्म को अपनी मूल दिशा से एकदम नई राह में मोड़ दिया। अब इसमें त्याग और संयम का स्थान भोग और सुख ने ले लिया। इस प्रकार से महायान मंत्रयान बन गया। इसके आगे दो भाग हो गए वज्रयान तथा सहजयान। जो सचमुच अपनी गाड़ी को इतना मजबूत और सहज बना सके कि उसमें पांडित्य और कृच्छ साधना का कोई महत्व नहीं रहा। आगे चलकर वाम मार्ग भी इसी से निकला जो विकृत अवस्था का एक हीन चित्र है। मन्त्रों द्वारा सिद्धि चाहने वाले सिद्ध कहलाये। बौद्ध धर्म ने जब तांत्रिक रूप धारण किया, तब उसमें से पाँच ध्यानी बुद्ध और उनकी शक्तियों के अतिरिक्त अनेक बोधिसत्वों की भावना की गयी जो सृष्टि का परिचालन करते है। वज्रयान में आकर 'महासुखवाद' का प्रर्वतन हुआ। प्रज्ञा और उपाय के योग से इसे महासुख दशा की प्राप्ति मानी गयी। इसे आनंदस्वरूप ईश्वरत्व ही समझिए। निर्वाण के तीन अवयव ठहराए गए - शून्य, विज्ञान और महासुख। उपनिषद में तो ब्रह्मानंद के सुख के परिणाम का अंदाजा करने के लिए उसे सहवाससुख से सौ गुना कहा था, पर वज्रयान में निर्वाण के सुख का स्वरूप ही सहवाससुख के समान बताया गया हैं। सिद्ध साहित्य का मुल्यांकन करते हुए प्रसिद्ध विद्वान आलोचक कहते है कि "जो जनता नरेशों की स्वेच्छाचारिता, पराजय या पतन से त्रस्त होकर निराशावाद के भीतर से आशावाद का संदेश देना, संसार की क्षणिकता में उसके वैचित्र्य का इन्द्रधनुषी चित्र खींचना इन सिद्धों की कविता का गुण था और उसका आदर्श था जीवन की भयानक वास्तविकता की अग्नि से निकाल कर मनुष्य को महासुख के शीतल सरोवर में अवगाहन कराना।"

हिंदी साहित्य के इतिहास में सिद्धों की संख्या ८४ मानी जाती है जिनमें से कुछ ही रचनाएँ उपलब्ध हुई है। प्रत्येक सिद्ध के नाम के पीछे 'पा' शब्द लगा हुआ है। इन सिद्धों में सरहपा, शबरपा, लुइपा, डोंभिपा, कण्हपा एवं कुक्कुरिपा आदि आदिकालीन सिद्ध साहित्य के प्रमुख सिद्ध कवि रहे हैं।

सिद्ध साहित्य की विशेषताएँ:

सिद्ध साहित्य की रचनाओं की शैली संध्या या उलटबाँसी शैली है। और ऊपर से रचनाओं का कुत्सित अर्थ भी निकलता है किन्तु सिद्ध साहित्य के जानकर उसके मूल एवं साधनात्मक अर्थ को समझ सकते हैं। सिद्ध साहित्य अपनी प्रवृत्ति और प्रभाव के कारण हिंदी साहित्य में विशेष महत्व रखता है। उसकी विशेषताएँ इस प्रकार से है:

१. जीवन की सहजता और स्वाभाविकता में दृढ़ विश्वास:

सिद्ध साहित्य में कवियों ने जीवन की सहजता और स्वाभाविकता में दृढ़विश्वास व्यक्त किया गया है। दूसरे धर्म के अनुयायियों ने कई प्रकार के प्रतिबंध लगाकर जीवन को कृत्रिम बनाया था। सिद्ध साहित्य में विभिन्न कर्मकाण्डो से साधना मार्ग को कृत्रिम बनाया था। सिद्धों ने इन सभी कृत्रिमताओं का विरोध किया और जीवन की सहजता तथा स्वाभाविकता पर बल दिया है। सहज सुख से ही महासुख की प्राप्ति होती है। इसीलिए सिद्धों ने सहज मार्ग का प्रचार किया। सहज मार्ग के अनुसार प्रत्येक नारी प्रज्ञा और प्रत्येक नर करुणा का प्रतिक है। इसीलिए नर-नारी का मिलन, प्रज्ञा और करुणा, निवृत्ति और प्रवृत्ति का मिलन है - दोनों को अभेदता ही 'महासुख' की स्थिति है।

२. गुरू महिमा का प्रतिपादन:

सिद्ध साहित्य में गुरू महिमा का वर्णन किया है। सिद्धों के अनुसार गुरू का स्थान वेद और शास्त्रों से भी ऊँचा हैं। सरहया ने कहा है की गुरू की कृपा से ही सहजानंद की प्राप्ति होती है। गुरू के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। जिसने गुरुपदेश का अमृतपान नहीं किया, वह शास्त्रों की मरुभूमि में प्यास से व्याकुल होकर मर जाएगा -

"गुरू उपासि आमिरस धावण पीएड जे ही।

बहु सत्यत्य नरू स्थलहि तिसिय मरियड ते हो ॥"

३. बाह्याडम्बरों पाखण्डों की कटु आलोचना:

सिद्ध साहित्य में पुराणी रूढ़ियों, परम्पराओं और बाह्य आडम्बरों, पाखण्डों का खुलकर विरोध किया गया है। इसी कारणवंश वेदों, पुराणों और शास्त्रों की खुलकर निंदा की हैं। सरहया ने वर्ण व्यवस्था, ऊँच-नीच और ब्राह्मण धर्मों के कर्मकाण्डों पर प्रहार किया है और कहते है कि "ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से तब पैदा हुए थे, अब तो वे भी वैसे ही पैदा होते हैं, जैसे अन्य लोग हैं। तो फिर ब्राह्मणत्व कहाँ रहा? यदि कहा कि संस्कारों से ब्राह्मणत्व होता है तो चाण्डाल को अच्छे संस्कार देकर ब्राह्मण को नंदी बना देते? यदि आग में घी डालने से मुक्ति मिलती है तो सबको क्यों नहीं डालने देते। होम करने से मुक्ति मुलती है यह पता नहीं लेकिन धुआ लगाने से आँखों को कष्ट जरूर होता है।" इसी के साथ दिगम्बर साधुओं को

लक्ष्य करते हुए फिर से सरहया कहते हैं कि "यदि नंगे रहने से मुक्ति हो जाए तो सियार, कुत्तों को भी मुक्ति अवश्य होनी चाहिए। केश बढ़ाने से मुक्ति हो सके तो मयुर उसके सबसे बड़े अधिकारी है। यदि कंध भोजन से मुक्ति हो तो हाथी, घोड़ों को मुक्ति पहले होनी चाहिए।" इस प्रकार से सिद्धों ने वेद, पुराण और पंडितों की कटु आलोचना की है।

४. तत्कालीन जीवन में आशावादी संचार:

सिद्ध साहित्य का मुल्यांकन करते हुए हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है कि "जो जनता नरेशों की स्वैच्छाचारिता, पराजय या पतन से त्रस्त होकर निराशावाद के गर्त में गिरी हुई थी, उसके लिए इन सिद्धों की वाणी ने संजीवनी का कार्य किया।.... जीवन की भयानक वास्तविकता की अग्नि से निकालकर मनुष्य को महासुख के शीतल सरोवर में अवगाहन कराने का महत्वपूर्ण कार्य इन्होंने किया।" बाद में आगे चलकर सिद्धों में स्वैराचार फैल गया, जिसका बूरा असर जन-जीवन पर पड़ गया।

५. रहस्यात्मक अनुभूति:

सिद्ध साहित्य में सिद्धों ने प्रज्ञा और करूणा के मिलनोपरान्त प्राप्त महासुख का वर्णन और विवेचन रूपकों के माध्यम से किया है। नौका, वीणा, चूहा, हिरण आदि रूपकों का प्रयोग रहस्यानुभूति की व्याख्या के लिए किया है। रवि, शशि, कमल, कुलिश, प्राण, अवधूत आदि तांत्रिक शब्दों का प्रयोग भी इसी व्याख्या के लिए हुआ है। डॉ. धर्मवीर भारती ने अपने शोध ग्रंथ 'सिद्ध साहित्य' में सिद्धों की शब्दावली की दार्शनिक व्याख्या कर उसके आध्यात्मिक पक्ष को स्पष्ट किया है।

६. श्रृंगार और शांत रस:

आदिकालीन सिद्धों की रचना में श्रृंगार और शांत रस का सुन्दर प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं पर उत्थान श्रृंगार चित्रण मिलता है। अलौकिक आनन्द की प्राप्ति का वर्णन करते समय ऐसा हुआ है।

७. जनभाषा का प्रयोग:

सिद्ध साहित्य की रचनाओं में संस्कृत तथा अपभ्रंश मिश्रित देशी भाषा का प्रयोग मिलता है। डॉ. रामकुमार वर्मा इनकी भाषा को जन समुदाय की भाषा मानते हैं। जनभाषा को अपनाने के बावजूद जहाँ वे अपनी सहज साधना की व्याख्या करते है, वहाँ उनकी भाषा क्लिष्ट बन जाती है। सिद्धों की भाषा को हरीप्रसाद शास्त्री ने 'संधा-भाषा' कहा है। साँझ के समय जिस प्रकार चीजें कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट दिखाई देती है, उसी प्रकार यह भाषा कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट अर्थ-बोध देती है। यही मत अधिक प्रचलित है।

८. साहित्य के आदि रूप की प्रामाणिक सामग्री:

सिद्ध साहित्य का महत्व इस बात में बहुत अधिक है कि उससे हमारे साहित्य के आदि रूप की सामग्री प्रामाणिक ढंग से प्राप्त होती है। चारण कालीन साहित्य तो केवल तत्कालीन राजनीतिक जीवन की प्रतिछाया है। लेकिन शताब्दियों से आनेवाली धार्मिक और सांस्कृतिक विचारधारा का एक सही दस्तावेज के रूप में सिद्ध साहित्य उपलब्ध है।

९. तांत्रिक साधना:

सिद्ध साहित्य में योग तंत्र की साधनाओं में मद्य तथा स्त्रियों के विशेषतः डोमिना, रजनी आदि के अबाध सेवन के महत्व का प्रतिपादन किया है। कहते है -

गंगा जउँना माझे रे बहई नाई।

तहि बुड़िलि मांतगि पोइआ लीले पार करेई।

पाहतु डोंबी, बाहलो डोंबी बाट त भइल उछारा।

सदगुरू पाअ-पए जाइब पुणु जिणधारा॥

- कण्हपा

१०. छंद प्रयोग:

सिद्ध साहित्य की अधिकांश रचना चर्या गीतों में हुई है। तथापि इसमें दोहा, चैपाई जैसे लोकप्रिय छंद भी प्रयुक्त हुए है। सिद्धों के लिए दोहा बहुत ही प्रिय छंद रहा है। उनकी रचनाओं में कहीं-कहीं सोरठा और छप्पय का भी प्रयोग पाया जाता है। अतः इस प्रकार से सिद्ध साहित्य की विशेषताएँ रही है।

२.१.३ नाथ साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ

नाथ साहित्य:

आदिकाल में सिद्ध साहित्य से आ गई विकृतियों के विरोध में नाथ साहित्य का जन्म हुआ। अर्थात नाथ पंथ का मूल भी बौद्धों की यही वज्रयान शाखा हैं। बौद्ध धर्म महायान से वज्रयान, वज्रयान से सहजयान और सहजयान से नाथ संप्रदाय के रूप में विकसित हुआ है। इस प्रकार से नाथ सम्प्रदाय को सिद्धों का विकसित तथा शक्तिशाली रूप कहा जाता है। सिद्धों की विचारधारा को लेकर इस सम्प्रदाय ने नवीन विचारों की प्राण-प्रतिष्ठा की। उन्होंने निरीश्वरवादी शून्य को ईश्वरवादी शून्य बना दिया। नाथ सम्प्रदाय वज्रयान की परम्परा में शैवमत की गोद में पला है। इस प्रकार से नाथ युग को सिद्ध युग और संतों के बीच की कड़ी माना जा सकता है। कुछ विद्वानों का कहना है कि "यदि नाथ लोग सिद्धों के दिखाये हुए मार्ग को अपना साधन चुन लेते तो उनकों कोई भी महत्त्व न मिलता।"

हिंदी साहित्य में नाथ साहित्य का विशेष महत्व रहा हैं। यहाँ पर 'नाथ' शब्द में 'ना' का अर्थ है 'अनादि रूप' और 'थ' का 'भूवनत्रय में स्थापित होना।' इस प्रकार से 'नाथ' शब्द का अर्थ होता है "वह अनादि धर्म, जो भूवनत्रय की स्थिति का कारण है।" अन्य व्याख्या के अनुसार "'नाथ' वह तत्व है, जो मोक्ष प्रदान करता है।" नाथ सम्प्रदाय उन साधकों का सम्प्रदाय है जो 'नाथ' को परमतत्व स्वीकार कर उसकी प्राप्ति के लिए योग साधना करते थे तथा इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर अपने नाम के अन्त में 'नाथ' की उपाधि लगा देते थे। साथ ही साथ 'ब्रह्म' और 'सदगुरू' के लिए भी नाथ शब्द का प्रयोग हुआ है। इनकी वेशभुषा में

प्रत्येक जोगी कान की लौ में बड़े-बड़े छेद करके कुंडल धारण करते है इसे कनफटे कहलाते है।

नाथ साहित्य तथा नाथ सम्प्रदाय के अंतर्गत कुल नौ नाथ आते है जिनके नाम है - आदिनाथ, मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ, गैणीनाथ, चर्पटनाथ, चौरंगीनाथ, जालंधरनाथ, भरथरीनाथ, गोपीचंद नाथ आदि। इसमें गोरखनाथ नाथ साहित्य के आरम्भकर्ता के रूप में माने जाते है। वे सिद्ध मत्येंद्रनाथ के शिष्य थे। उन्होंने अपने साहित्य में गुरू-महिमा, इंद्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मन: साधना, कुंडलिनी-जागरण, शून्य समाधि आदि को अधिक महत्व दिया हैं। नाथ साहित्य में गोरखनाथ ने हठयोग का भी उपदेश दिया था। इसमें हठयोगियों के 'सिद्ध-सिद्धांत-पद्धति' ग्रंथ के अनुसार अर्थ दिया है - 'ह' का अर्थ है 'सूर्य' और 'ठ' का अर्थ है 'चंद्र'। इन दोनों के योग को 'हठयोग' कहा जाता है। यहाँ पर सूर्य 'इड़ा नाडी' का और चंद्र 'पिंगला नाडी' का प्रतीक है। इस साधना पद्धति के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति कुण्डलिनी और प्राणशक्ति लेकर पैदा होता है। गोरखनाथ ने ही हिंदी साहित्य में षट्चक्रों वाला योगमार्ग चलाया था। इस मार्ग पर विश्वास करने वाले हठयोग की साधना द्वारा शरीर और मन को शुद्ध करके शून्य में समाधि लगाता था और वहीं ब्रह्म का साक्षात्कार करता था। गोरखनाथ ने लिखा हैं कि धीर वह है, जिसका चित्त विकार साधन होने पर भी विकृत नहीं होता है।

नौ लख पातरि आगे नाचैं, पीछे सहज अखाड़ा।

ऐसे मन लै जोगी खेलै, तब अंतरि बसै भंडारा॥

अर्थात गोरखनाथ की हठयोग साधना में ईश्वरवाद व्याप्त था। इन हठयोगियों ने भी उसका प्रचार किया, जो रहस्यवाद के रूप में प्रतिफलित हुआ है और जिसका भक्तिकाल में कबीर के साथ अन्य संतों ने अनुकरण किया है।

नाथ साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ:

सिद्धों की वाममार्गी भोगप्रधान योग-साधना की प्रतिक्रिया के रूप में आदिकाल में नाथपंथियों की हठयोग साधना आरंभ हुई। इसे सिद्धों की परम्परा का ही विकसित रूप माना जाता है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है -

१. चित्त शुद्धि और सदाचार में विश्वास:

सिद्ध साहित्य में जिस तरह की मानसिकता फैली हुई थी वहीं मानसिकता अर्थात अहिंसा की, विषवेलि को काटकर चारित्रिक दृढ़ता और मानसिक पवित्रता पर भर देकर नाथ साहित्य में उसे अपनाया था। इसी के साथ नैतिक आचरण और मन की शुद्धता पर अधिक बल देने का प्रयास नाथों का रहा हैं। मद्य, भांग और धतुरा आदि मादक पदार्थों का सेवन करने से परहेज किया था। योग साधना के समय नारी के आकर्षण की सबसे बड़ी बाधा होती है उससे दूर रहने का उपदेश भी नाथों द्वारों दिया गया था।

२. रूढ़ियों और बाह्यडम्बरों का विरोध:

बाह्यडम्बरों और परम्परागत चलने वाली रूढ़ियों का नाथों ने खुलकर विरोध किया है। कहते है कि पिण्ड में ब्रह्माण्ड होने से परमतत्व को बाहर खोजना ही व्यर्थ है। हठयोग का प्रयोग करके उस परमतत्व का अनुभव कर सकते है और मन की शुद्धता को ओर बढ़ा सकते है। इसीलिए नाथ साहित्य में बाह्यडम्बरों और रूढ़ियों को कोई स्थान नहीं है। इसी के साथ मूर्तिपूजा, मुण्डन करके विशिष्ट वस्त्र धारण करना, वेद-पुराण पढ़ना और ऊँच-नीच आदि का खुलकर विरोध किया है।

३. गुरू महिमा:

नाथ साहित्य तथा सम्प्रदाय में गुरू का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसी कारणवंश गुरू-शिष्य परम्परा में नाथ सम्प्रदाय में इसे ज्यादा महत्व दिया गया है। गोरखनाथ खुद कहते है कि गुरू ही आत्मब्रह्म से अवगत कराते है। गुरू द्वारा ज्ञान प्राप्त होने से तीनों लोक का रहस्य प्रकट हो सकता है। इसी के साथ वैराग्यभाव का दृढ़िकरण और त्रिविध साधना गुरू के ज्ञान से ही प्राप्त होती है।

४. उलटबासियाँ:

नाथ साहित्य में उलटबासियाँ का प्रयोग अपनी साधना की अभिव्यक्ति के लिए किया है। इसमें कहीं-कहीं क्लिष्ट जरूर है लेकिन यह उलटबासियाँ रस से ओत-प्रोत है। नाथ साहित्य में मनः साधना और प्राण साधना रही है। मनः साधना से तात्पर्य है कि मन को संसार से खींचकर अन्तकरण की ओर उन्मुख कर देना है। मन की स्वाभाविक गति है बाहरी जगत की ओर रहना उसे पलटकर अंतर जगत की ओर करनेवाली इस प्रक्रिया को उलटबाँसी कहते है।

५. जनभाषा का परिष्कार:

आदिकालीन साहित्य में हिंदी को समृद्ध कराने में नाथ साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। नाथों द्वारा संस्कृत भाषा में विपुल मात्रा में साहित्य लिखा गया हैं लेकिन सामान्य जनता के लिए अपने विचार जन-भाषा में ही प्रस्तुत किए है। जिस प्रकार से उनकी परम्परागत रूढ़ि को लेकर विचारधारा अलग रही है उसी प्रकार से उनकी भाषा रही है। अंत कह सकते है कि नाथ साहित्य में स्वच्छन्द भाव और विचारों की प्रामाणिकता को ही स्थान दिया है।

इस प्रकार से नाथ साहित्य की विशेषताएँ रहीं हैं।

२.१.४ जैन साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ

जैन साहित्य:

आदिकाल की उपलब्ध साधन सामग्री के अनुसार सबसे अधिक ग्रंथों की रचना जैन ग्रंथों की रही है। जैन धर्म के प्रवर्तक के रूप में महावीर स्वामी है। इनका समय छठी शताब्दी से माना जाता है। बौद्धों की तरह इन्होंने भी संसार के दुःखों की ओर बहुत ध्यान दिया। सुख-

दुख के बंधनों पर इन्होंने जीत हासिल की है। उसे 'जिन्न' कहा गया है। 'जिन्न' शब्द की उत्पत्ति जैन शब्द से रही है। महावीर स्वामी ने अहिंसा पर ज्यादा बल देकर मूर्तिपूजा का विरोध किया। आगे जैन धर्म दो शाखाओं में विभाजित हुआ दिगंबर और श्वेतांबर। जैन धर्म की इन दो शाखाओं ने धर्म प्रसार के लिए जो साहित्य लिखा वह जैन साहित्य के नाम से जाना जाता है। जैन साहित्य के संबंध में यही कह सकते है कि वे उत्तर भारत फैले रहे परंतु आठवी शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक काठियावाड़ गुजरात में इनकी प्रधानता रही। वहाँ के राजाओं में से चालुक्य, राष्ट्रकूट और सोलंकी राजाओं पर इसका पर्याप्त प्रभाव रहा है। महावीर स्वामी का जैन धर्म, हिन्दू धर्म के अधिक नजदीक है। अहिंसा, करूणा, दया और त्याग को जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान बताया। त्याग इन्द्रियों के अनुशासन में नहीं कष्ट सहने में है। उन्होंने उपवास तथा व्रतादि कृच्छ साधना पर अधिक बल दिया और कर्मकांड की जटिलता को हटाकर ब्राह्मण तथा शुद्र को मुक्ति का समान भागी ठहरा दिया ।

आदिकाल के अंतर्गत हिंदी के पूर्वी क्षेत्र में सिद्धों ने बौद्ध धर्म के वज्रयान मत का प्रचार-प्रसार हिंदी कविता के माध्यम से किया। उसी प्रकार से जैन साधुओं ने पश्चिमी क्षेत्र में अपने मत का प्रचार-प्रसार हिंदी कविता के माध्यम से किया है। इन कवियों की रचनाओं में रास, फागु, चरित और आचार आदि विभिन्न शैली मिलती है। 'रास' को जैन साधुओं ने एक प्रभावशाली रचनाशैली का रूप दिया है। जैन मंदिरों में श्रावक लोग ताल देकर रात्रि के समय में 'रास' का गायन करते थे। 'आचार' शैली जैन-काव्यों में घटनाओं के स्थान पर उपदेशात्मकता को प्रधानता दी गई है। 'फागु' और 'चरितकाव्य' शैली की सामान्यता के लिए प्रसिद्ध हैं। जैन मुनियों ने अपभ्रंश में प्रचुर मात्रा में रचनाएँ लिखी है जो धर्म से संबंधित है। विशेषतः इसमें अहिंसा, कष्ट सहिष्णुता, विरक्ति और सदाचार की बातों का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त उस समय के व्याकरणादि ग्रंथों में साहित्य के उदाहरण मिलते है। कुछ जैन कवियों ने हिन्दुओं के प्रसिद्ध ग्रंथ 'रामायण' और 'महाभारत' की कथाओं में से राम और कृष्ण के चरित्रों को अपने धार्मिक सिद्धांतों और विश्वासों के अनुरूप अंकित किया है। इसके अतिरिक्त जैन कवियों ने रहस्यात्मक काव्य भी लिखे हैं। इस साहित्य के प्रणेता शील और ज्ञान-सम्पन्न उच्च वर्ग के थे।

जैन अपभ्रंश साहित्य की रचना करनेवाले प्रसिद्ध कवि स्वयंभू, पुष्पदंत और धनपाल हैं । इन्होंने काव्यों की रचना की है। इनके अतिरिक्त देवसेन, हेमचंद्र, सोमप्रभू सूरि, जिनधर्म सूरि, जिनदत्त सूरि, शालिभद्र सूरि, विजयसेन सूरि आदि कई कवि इस संप्रदाय के प्रसिद्ध रहे है।

जैन साहित्य की विशेषताएँ:

हिंदी साहित्य के विकास में जैन धर्म का बहुत बड़ा योगदान रहा है। अपभ्रंश भाषा में जैनों द्वारा कई ग्रंथ लिखे गए है। अपभ्रंश से हिंदी का विकास होने के कारण जैन साहित्य का हिंदी पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इस साहित्य की सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार से है -

१. उपदेश मूलकता:

उपदेश मुलकता जैन साहित्य की प्रमुख तथा विशेष प्रवृत्ति है। इसके मुल में जैन धर्म के प्रति दृढ़ आस्था और उसका प्रचार है। जैन कवियों ने दैनिक जीवन की प्रभावोत्पादक

घटनाएँ, चरित नायकों, आदर्श श्रावकों, अध्यात्म के पोषक तत्व, शलाका पुरूषों, तपस्वियों एवं पात्रों के जीवन का विशेष रूप से वर्णन किया है। इसी कारण यह उपदेश मुलकता का स्वर मुख्य स्वर के रूप में उभरकर आया है।

२. विषय की विविधता:

जैन साहित्य के अंतर्गत धार्मिक साहित्य ज्यादा होने के बावजुद सामाजिक, धार्मिक और ऐतिहासिक विषयों के साथ-साथ लोक आख्यान की कई कथाओं को अपनाता है। यहाँ पर विशेष रूप से रामायण, महाभारत आदि कथाओं को जैन कवियों ने अत्याधिक दक्षता के साथ अपनाया है और जैन साहित्य में सभी प्रकार की रचनाओं के विषय का समावेश हुआ है।

३. तत्कालीन स्थितियों का यथार्थ चित्रण:

जैन साहित्य कि रचना राजाश्रय के दबाव और दरबारी संस्कृति से मुक्त होने से कवियों की रचनाओं में तत्कालीन स्थितियों का यथार्थ चित्रण हुआ है। आदिकालीन आचार-विचार, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक स्थितियों पर प्रकाश डालने में जैन साहित्य की रचनाएँ पर्याप्त रूप में सहायक होती है। और तत्कालीन समाज को परखने में भी आसानी होती है।

४. कर्मकाण्ड रूढ़ियों तथा परम्पराओं का विरोध:

जैन अपभ्रंश कवियों ने बाह्य उपासना, पूजा-पाठ, शास्त्रीय ज्ञान, रूढ़ियों और परम्पराओं का घोर विरोध किया है। वे मंदिर, तीर्थ, शास्त्रीय ज्ञान, वेष, जाति, वर्ण, योग, तंत्र, मंत्र आदि किसी भी प्रकार की संस्थाओं को नहीं मानते है। मन की शुद्धता के लिए हर व्यक्ति को एक आवश्यक वस्तु मानते है। इसी के साथ धन-सम्पत्ति की क्षणिकता, विषयों की निंदा, मानव देह की नश्वरता, संसार से संबंधीत मिथ्यापन आदि का विरोध करते हुए जैन कवियों ने केवल शुद्ध आत्माओं पर बल दिया है।

५. रहस्यवादी विचारधारा का समावेश:

जैन साहित्य में कवियों की रचनाएँ रहस्यवादी विचार धारा से ओत-प्रोत है। इनकी रचनाओं में बाह्य आचार, कर्मकांड, मूर्ति का बहिष्कार, तीर्थव्रत, देहरूपी देवालय में ईश्वर की स्थिति बताना तथा शरीर में स्थित परमात्मा की अनुभूति पाकर परम समाधि रूपी आनन्द प्राप्त करना कविताओं का मुख्य स्वर रहा है। यह आनन्द शरीर में स्थित परमात्मा गुरू की कृपा से प्राप्त होता है यही जैन कवियों की धारणा है।

६. शांत या निर्वेद रस की प्रमुखता:

जैन साहित्य में शांत या निर्वेद रस की प्रमुखता रही है। इसमें करूण, वीर और श्रृंगार रसों का परिपाक हुआ है। विशेषतः इसमें शांत रस की प्रधानता पाई जाती है। इसीलिए जैन साहित्य के अंत में निश्चित ही शांत रस प्रधान रूप में दिखाई देता है। कुछ कवियों ने श्रृंगार रस कथाओं में उपयोग किया है।

७. प्रेम के विविध रूपों का चित्रण:

जैन अपभ्रंश में विवाह के लिए प्रेम, विवाह के बाद प्रेम, असामाजिक प्रेम, रोमाण्टिक प्रेम और विषम प्रेम आदि प्रेम के पाँच रूप मिलते है । जैन साहित्य की रचनाओं में से 'पउमचरिउ' में प्रेम की विषमता का उदाहरण देख सकते है। इस रचना के भीतर रावण के प्रेम को दिखाया है। परंतु इसमें रोमाण्टिक प्रेम का ही इस साहित्य में अधिक प्रस्फुटन हुआ है।

८. अलंकार योजना:

जैन साहित्य में अर्थालंकार और शब्दालंकार दोनों ही प्रयुक्त हुए है। लेकिन मुख्य रूप से अर्थालंकार का प्रभाव अधिक दिखाई देता है । अर्थालंकार में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, व्यक्तिरेक, उल्लेख, अनन्वय, विरोधाभास, भ्रान्ति, संदेह आदि का सफलपूर्वक प्रयोग हुआ है। शब्दालंकारों में श्लेष, यमक और अनुप्रास की बहुलता है।

९. छन्द-विधान:

छंद की दृष्टि से जैन साहित्य समृद्ध है । इसमें कड़वक, पट्पदी, चतुष्पदी, धत्ता बदतक, अहिल्या, बिलसिनी, स्कन्दक, दुबई, रासा, दोहा, उल्लाला, सोरठा आदि छन्दों का प्रयोग मिलता है।

१०. लोकभाषा की प्रतिष्ठा:

जैन साहित्य में अपभ्रंश से निकली हुई हिंदी प्राचीन रूप में मिलती है। जैन साधु ग्राम-ग्राम, नगर-नगर घूमकर धर्म का प्रचार करते थे। इसीलिए जैन साधुओं ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए लोक भाषा का प्रयोग किया और उसी को प्रतिष्ठा प्रदान की थी। इस प्रकार से जैन साहित्य की विशेषताएँ हैं।

२.१.५ रासो साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ

रासो साहित्य:

सर्वप्रथम हम रासो शब्द की उत्पत्ति के बारे में जान लेते है। इस उत्पत्ति के संबंध में अनेक विद्वानों में मत-भेद है। सबसे पहले प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान गार्सा द तॉसी ने 'रासो' शब्द की उत्पत्ति 'राजसूय' शब्द से मानी है। कहते है कि चारण काव्यों में 'राजसूय यज्ञ' का उल्लेख है और इसी कारण इनका नाम 'रासो' पड़ गया होगा। डॉ. रामकुमार वर्मा ने रासो शब्द की उत्पत्ति 'रहस्य' शब्द से मानी हैं। कुछ विद्वान तो रासो शब्द का संबंध रहस्य से भी जोड़ना चाहते है । लेकिन यह ठिक नहीं है । दूसरें लोगों ने इसे राजस्थानी तथा ब्रज-भाषा को 'रासो' शब्द का अर्थ लड़ाई-झगड़ा रहा है ऐसा माना है। परंतु इस रूप में इस शब्द की कोई सार्थकता इन चरित काव्यों के साथ दृष्टिगोचर नहीं होती है। कुछ रासों ग्रंथों में लड़ाई-झगडे का वर्णन है पर कुछ ग्रंथों में शुद्ध रूप से प्रेम का चित्रण हुआ है । जैसे कि वीरगाथाओं में 'बीसलदेव रासो' तथा अपभ्रंश साहित्य में 'संदेश रासक' आदि । इन ग्रंथों में युद्धों का अभाव होने के बावजुद भी इनका नाम रासो हैं। और एक विद्वान नरोत्तम स्वामी है। उन्होंने 'रासो' शब्द की उत्पत्ति 'रसिक' शब्द से मानी है जिसका अर्थ प्राचीन राजस्थानी भाषा के

अनुसार कथा-काव्य में मिलता है। उनके अनुसार शब्द रूप में अर्थ है 'रसिकरासरासो'। आचार्य चन्द्रबली पांडेय ने 'रासो' शब्द का संबंध संस्कृत साहित्य के 'रासक' से माना है। संस्कृत साहित्य में रासक की गणना रूपक तथा उपरूपक में की जाती है। उनके अनुसार रासों ग्रंथों का प्रणयन प्रदर्शन के निमित्त हुआ था। कुछ विद्वानों ने रासो शब्द का संबंध 'रास या रासक' से जोड़ा है। इसका अर्थ होता है ध्वनि, क्रीड़ा, श्रृंखला, विलास, गर्जन और नृत्य।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रासो शब्द का संबंध 'रसायन' से माना है जो कि बीसलदेव रासों में काव्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वे अपने मत को समर्थन करते हुए कहते है कि बीसलदेव रासो की एक पंक्ति भी उद्धृत की है:

"नाल्ह रसायन आरम्भई शारदा तुठी ब्रह्म कुमारि।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी रास से संबंध में कहते है कि 'रासक एक छन्द भी है और काव्य भेद भी।' उनके अनुसार जो काव्य रासक छन्द में लिखे जाते थे, वे ही हिन्दी में 'रासो' कहलाने लगे। इस प्रकार से 'रासो' शब्द को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मत-भेद दिखाई देते है।

रासो साहित्य में चरित्रों को बाँधने के लिए ही छन्दों का प्रयोग होता था। वस्तुतः रासो काव्य मूलतः रासक छन्द का समुच्चय है। अपभ्रंश में 29 मात्रा का एक रासो या रास छन्द प्रचलित थे। ऐसे अनेक छन्दों की परम्परा लोकगीतों में रही होगी। एकरसता के निवारणार्थ बीच-बीच में दूसरे छन्द जोड़ने तथा गाने की प्रथा चल पड़ी। 'संदेश रासक' इसका उत्तम उदाहरण है। पहले रासो काव्य छन्दों में लिखे गए। कालान्तर में बदलाव आया। 'बीसलदेव रासो' ऐसा ही एक काव्य रहा है जिसमें छन्दों का प्रयोग हुआ है। यह काव्य आगे चलकर रूप कोमल भावों के अतिरिक्त अन्य विचारों के वाहन का साधन बना। प्रेम भाव के साथ इमसें वीरों की गाथाओं का सम्मिश्रण देखने को मिला। इस तरह से इस काल के रासों काव्यों में विरोचित और श्रृंगारिक भावनाओं के वर्णन सुलभतापूर्वक मिल जाते है। इसी के साथ-साथ रासो साहित्य सामंती-व्यवस्था, प्रकृति और संस्कार से रहा है। इसे 'देशीभाषा काव्य' के नाम से भी जाना जाता है। इस क्षेत्र के रचनाकार हिन्दू राजपूत राजाश्रय में रहनेवाले चारण या भाट थे। समाज में उनका स्थान और सम्मान था, क्योंकि उनका जुड़ाव सीधे राजा से होता था। ये चारण या भाट कलापारखी और कलारचना में निपुण थे। कुशलता से युद्ध करना भी जानते थे और युद्ध शुरू होने पर अपनी सेना की अगुवाई विरूदावली गा-गाकर किया करते थे। ये राजाओं, आश्रयदाताओं, वीर पुरूषों तथा सैनिकों के वीरोचित युद्ध घटनाओं को केवल बढ़ा-चढ़ाकर ही नहीं, उसकी यथार्थपरक स्थितियों एवं संदर्भों को भी बारीकी के साथ चित्रित करते थे। वीरोचित भावनाओं के वर्णन के लिए इन्होंने 'रासक या रासो' छन्द का प्रयोग किया था, क्योंकि यह छन्द भावना को सम्प्रेषित करने के लिए अनुकूल था। इसलिए इनके द्वारा रचित काव्य को 'रासो काव्य' कहा गया है। रासो साहित्य के प्रमुख ग्रंथ है खुमाण रासो, परमाल रासो, हम्मीर रासो, विजयपाल रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो और संदेश रासक आदि।

रासो साहित्य की विशेषताएँ:

रासो साहित्य मूलतः सामन्ती व्यवस्था, प्रकृति और संस्कार से उपजा हुआ साहित्य है जिसका मुख्य स्वर वीरत्व रहा हैं। उसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

१. संदिग्ध रचनाएँ:

आदिकाल में उपलब्ध हुई सभी रासो से संबंधित रचनाएँ ऐतिहासिकता की दृष्टि से संदिग्ध मानी गई है । इस काल में प्रमुखतः चार रासो ग्रंथ उपलब्ध हुए है - 'खुमान रासो', 'बिसलदेव रासो', 'परमाल रासो' और 'पृथ्वीराज रासो' आदि । भाषा शैली और विषय सामग्री की दृष्टि से इन ग्रंथों में कई शताब्दियों तक कई प्रकार का परिवर्तन और परिवर्धन होता रहा। इसी परिवर्तन और परिवर्धन के कारण इन ग्रंथों का मूल्य रूप ही दब गया है। इसीलिए निश्चित नहीं कहा जा सकता है कि यह ग्रंथ आश्रयदाताओं के समय में ही लिखे थे आ अन्य समय लिखे गए थे।

२. ऐतिहासिकता और कल्पना का सम्मिश्रण:

आदिकालीन रासो साहित्य में ऐतिहासिक तथ्य और कल्पना का सम्मिश्रण मिलता है। इनमें ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा नहीं हो पायी है और काल्पनिक वर्णनों की अधिकता हो गई है। इन वीर गाथाओं में ऐतिहासिक और कल्पना का समावेश हो गया है। इन समय के कवियों ने काल्पनिक घटनाओं और अत्युक्तियों का सहारा लेना पड़ा है। इसीलिए यह ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं है। कुछ रासों ग्रंथों की घटनाएँ भी एक-दूसरे से मेल नहीं खाती है। उदाहरण के तौर पर 'परमाल रासो' को ले सकते है। इस ग्रंथ का नायक राजा परमाल को पृथ्वीराज चौहान द्वारा मार दिए जाने का उल्लेख मिलता है। बल्कि चंद कवि कृत 'पृथ्वीराज रासो' में सिर्फ दण्ड देकर छोड़ने का उल्लेख मिलता है। दोनों ग्रंथों की घटना ऐतिहासिक ही है। रासो काव्य में ऐतिहासिक घटनाओं में, तिथियों में, वंशावली में की गई छेड-छाड ने उनकी प्रामाणिकता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है।

३. युद्ध और प्रेम:

रासो साहित्य में चरित नायकों के युद्ध अधिकांशतः अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए होता था और कभी-कभी राजकाज चलाने के लिए धन की आवश्यकता उन्हें पड़ती थी। इन सब दृष्टि से देखने से लगता है कि रासो ग्रंथों में युद्ध अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए ही होते थे। इसी के साथ रासो ग्रंथों में श्रृंगार तथा वीर दोनों रसों का सुंदर परिपाक भी दिखाई देता है। इसमें 'पृथ्वीराज रासो' के चरित नायक पृथ्वीराज चौहान एक वीर योद्धा होने के साथ-साथ एक प्रेमी भी हैं। कवि ने युद्ध वर्णनों में पृथ्वीराज की वीरता और पराक्रम का वर्णन किया है। दूसरी ओर इसमें रूप-सौंदर्य, प्रेम का सुंदर चित्रण भी किया गया है। प्रेम के अंतर्गत रासों कवियों ने श्रृंगार रस के साथ संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का चित्रण किया है। इसी के साथ 'संदेश रासक' के समान ही 'बीसलदेव रासो' की भावभूमि प्रेम की निश्चल अभिव्यक्ति से सरस है।

४. काव्य रूप:

आदिकाल के अंतर्गत रासो साहित्य की रचनाएँ दो प्रकार की रही है मुक्तक काव्य और प्रबंध काव्य। मुक्तक काव्य में प्राचीन ग्रंथ 'बीसलदेव रासो' है और प्रबंध काव्य में 'पृथ्वीराज रासो' यह प्राचीन ग्रंथ है। आज इस ग्रंथ को हिंदी का पहला महाकाव्य कहा जाता है। इन दो काव्य रूपों के अतिरिक्त और दूसरा कोई काव्यरूप उपलब्ध नहीं है। इन ग्रंथों में काव्य रूपों की विविधता का अभाव है। यहाँ पर न तो कोई दृश्य काव्य लिखा गया और न ही गद्य लिखने का किसीने प्रयत्न किया। इस समय में कुछ अप्रामाणिक ग्रंथ मिलते है जैसे कि 'जयचंद प्रकाश' और 'जयमयंक जसचंद्रिका' इस कोटि के ग्रंथ है।

५. प्रशस्ति काव्य:

रासो साहित्य का प्रतिपाद्य रहा है कि राजा के शौर्य और वीरता का यशोगान करना था। रासो काव्य के रचयिताओं ने अपने चरित नायकों के युद्ध कौशल और उनके वीरता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है। अपने काव्यों में कवियों ने चरितनायक के समक्ष दूसरें राजाओं की हीनता का वर्णन भी किया है। क्योंकि आश्रय देने वाले राजाओं को प्रसन्न रखना था। और राजाओं के वीरता का संचार करना कवियों का कर्तव्य भी था।

६. प्रकृति - चित्रण:

रासो साहित्य के अंतर्गत प्रकृति का आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपों में चित्रण किया है। इस साहित्य में नदि, पर्वत और नगर आदि का वस्तु वर्णन भी सुंदर हुआ है। अधिकत्तर कवियों ने प्रकृति का चित्रण उद्दीपन के रूप में ही किया है। प्रकृति का स्वतंत्र रूप में चित्रण किए हुए स्थान इस साहित्य के काव्यों में थोड़े ही मिलते है। अधिकत्तर उसका उपयोग उद्दीपन रूप में किया गया हैं।

७. रासो ग्रंथ:

आदिकालीन साहित्य में रासो शब्द की व्युत्पत्ति के संदर्भ में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए है। इसमें आ. रामचंद्र शुक्ल जी ने रासो शब्द का संबंध 'रसायन' से माना है। और कुछ विद्वान इसका संबंध 'रहस्य' से मानते हैं। परंतु 'बीसलदेव रासो' में इसका अर्थ रसायन का परिचायक के रूप में दिया जिसका संबंध मूल कथानक से है। मुल रूप में 'रासो' शब्द छन्द के लिए प्रयुक्त हुआ है, जिसका उपयोग अपभ्रंश साहित्य में हुआ है। फिर इसका प्रयोग गेय रूपक के अर्थ में होने लगा। पीछे इस शब्द का प्रयोग चरित काव्य एवं कथा काव्य के लिए होने लगा था। रासो नाम के चरित काव्यों में से कुछ का उपयोग गाने के लिए अधिकत्तर होने लगा। इसी से जनवाणी ने इनको धीरे-धीरे अपने समय के अनुसार इनका पुराना रूप ही बदल दिया गया।

८. जनजीवन से संपर्क नहीं:

रासों साहित्य में सामन्ती जीवन उभरकर आते हुए दिखाई देता है। सामान्य जनजीवन से किसी भी प्रकार का संबंध नहीं रहा है। जो कवि राजदरबार में थे उनसे जन-जीवन की

विस्तृत व्याख्या की आशा करना ठीक नहीं था। उन्होंने स्वामित्व के सुखाय काव्यों की सृष्टि की है। अतः उनमें भी जन-जीवन के घात-प्रतिघातों का अभाव हैं।

९. डिंगल और पिंगल भाषा:

रासो साहित्य की एक डिंगल और पिंगल भाषा महत्वपूर्ण विशेषता है। आदिकालीन समय में साहित्य के क्षेत्र में राजस्थानी भाषा को आज के विद्वान डिंगल नाम से जानते है। यह भाषा वीरत्व के स्वर के लिये बहुत उपयुक्त भाषा है। वीरगाथाओं के रचयिता चारण कवि अपनी कविता राजदरबार में ऊँचे स्वर में गाते है तब उसमें डिंगल भाषा उपयुक्त थी। प्रायः इसका प्रयोग युद्ध वर्णन के लिए ही हुआ है। पिंगल भाषा का प्रयोग विवाह और प्रेम के प्रसंगों के वर्णन के लिए किया जाता था। इस तरह से डिंगल भाषा का प्रयोग युद्ध के लिए और पिंगल भाषा का प्रयोग प्रेम तथा विवाह के वर्णन के लिए होता था। ये दोनों भाषा इतनी घुल-मील गई हैं कि दोनों भाषाओं में विभाजक रेखा खींचना कठिन हो गया है। और इन दोनों भाषाओं के रूपों का पृथक-पृथक विश्लेषण करना एक समस्या बनी हुई है। अतः यही कह सकते है कि डिंगल और पिंगल दो स्वतंत्र भाषाएँ नहीं हैं, एक ही भाषा के अंतर्गत आते हैं।

१०. अलंकार:

रासो साहित्य में अलंकारों का प्रयोग हुआ है। वीरगाथाकालीन चारण कवियों ने अलंकारों पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया फिर भी उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। पृथ्वीराज रासो में कई जगह पर अलंकारों का प्रयोग हुआ है। जो कि सजीव एवं सुंदर हैं। वस्तुतः रासों काव्य में शब्दांलकार और अर्थालंकार का प्रयोग हुआ है।

११. छन्द:

आदिकालीन रासो साहित्य में छंद के क्षेत्र में एक क्रान्ति हुई है। छन्दों का जितना विविधमुखी प्रयोग उस साहित्य में हुआ है उतना उसके पूर्ववर्ती साहित्य में नहीं हुआ। 'पृथ्वीराज रासो' में तो दोहा, चौपाई, रोला आदि प्रमुख रूप से रहे है। इसी के साथ तोटक, तोमर, गाथा, गाहा, पद्धरि, आर्या, उल्लाला और कुण्डलिया आदि छंदो का प्रयोग बड़ी ही कलात्मकता के साथ किया गया हैं। इस प्रकार से छन्दों का प्रयोग रासो साहित्य में हुआ है।

इस प्रकार से रासो साहित्य की विशेषताएँ हैं।

२.१.६ सारांश

सारांशतः यह कह सकते है भारतीय साधना के इतिहास में सिद्धों की सत्ता रही है। सिद्ध साहित्य को बौद्ध धर्म की घोर विकृति माना गया हैं। यह धर्म सहानुभूति और सदाचार के मूल तत्वों पर आधारित है। सिद्ध प्रायः अशिक्षित और हिन् जाति से संबंध रखते थे, उनकी साधना की साधनभूत मुद्रायें कापाली, डोम्बी आदि नायिकाएँ भी निम्न जाति की थीं क्योंकि उनके लिए ये ही सुलभ थीं। उन्होंने धर्म और अध्यात्म की आड़ में जन-जीवन के साथ विड़म्बना करते नारी का उपभोग किया। बस यहीं उनका चरम गन्तव्य था। सिद्ध साहित्य में आयी हुई विकृतियों के विरोध में नाथ साहित्य का जन्म हुआ हैं और इसका मूल

भी बौद्ध की वज्रयान शाखा रहीं हैं। इसी संप्रदाय में गोरखनाथ के द्वारा हठयोग का उपदेश दिया गया हैं। जैन साहित्य में महात्मा बुद्ध के समान महावीर स्वामी ने अपने धर्म का प्रचार लोकभाषा के माध्यम से किया। जैन साहित्य के संबंध में यही कह सकते है कि वे उत्तर भारत फैले रहे परंतु आठवी शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक इनकी प्रधानता रही। महावीर स्वामी का जैन धर्म, हिन्दू धर्म के अधिक नजदीक है। अहिंसा, करूणा, दया और त्याग को जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान बताया। उन्होंने उपवास तथा व्रतादि कृच्छ साधना पर अधिक बल दिया और कर्मकांड की जटिलता को हटाकर ब्राह्मण तथा शुद्र को मुक्ति का समान भागी ठहरा दिया। रासो साहित्य के संदर्भ में यह कह सकत है कि राजाओं के वीरता का गुणगान को चित्रित किया है। इसी के साथ इस साहित्य के भीतर हमें श्रृंगार एवं युद्धों का वर्णन देखने को मिलता है।

२.१.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१. सिद्ध साहित्य में बड़े रथों के आरोही कौन थे?

उत्तर: 'महायान' सिद्ध साहित्य में बड़े रथों के आरोही थे।

२. बौद्ध धर्म का उदय किस प्रतिक्रिया के रूप में हुआ?

उत्तर: वैदिक कर्मकांड की जटिलता एवं हिंस्सा की प्रतिक्रिया के रूप में बौद्ध धर्म का उदय हुआ।

३. सिद्धों की संख्या कितनी मानी गई है?

उत्तर: सिद्धों की संख्या ८४ मानी हैं।

४. सिद्धों की भाषा को हरीप्रसाद शास्त्री क्या कहते हैं?

उत्तर: संधा भाषा।

५. जैन धर्म के प्रर्वतक कौन है?

उत्तर: महावीर स्वामी।

६. जैन अपभ्रंश साहित्य की रचना करने वाले प्रसिद्ध कवि कौन-कौन हैं?

उत्तर: पुष्पदंत, स्वयंभू और धनपाल।

७. जैन कवियों ने किस हिंदुओं के प्रसिद्ध ग्रंथों में राम और कृष्ण के चरित्रों को अंकित किया है?

उत्तर: रामायण और महाभारत।

८. नाथ संप्रदाय को किसका विकसित रूप कहा जाता है?

उत्तर: नाथ संप्रदाय को सिद्धों का विकसित तथा शक्तिशाली रूप कहा है।

९. नाथ साहित्य में कुल कितने नाथ हैं?

उत्तर: नाथ साहित्य में कुल नौ नाथ है।

१०. हठयोग में चंद्र किसका प्रतिक है?

उत्तर: हठयोग में चंद्र पिंगला नाड़ी का प्रतिक है।

११. 'संदेश रासक' यह ग्रंथ आदिककाल के किस साहित्य अंतर्गत आता हैं?

उत्तर: रासो साहित्य में 'संदेश रासक' यह ग्रंथ आता हैं।

२.१.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. सिद्ध साहित्य की विशेषताओं पर विस्तार से प्रकाश डालिए?

२. जैन संप्रदाय की जानकारी देकर उसकी विशेषताएँ की चर्चा कीजिये?

३. रासो साहित्य में कौन-कौन सी प्रमुख विशेषताएँ आती हैं उस पर विस्तृत लेख लिखिए?

४. नाथ संप्रदाय की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिये?

२.१.९ संदर्भ ग्रंथ

१. हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेंद्र

२. हिंदी साहित्य का इतिहास - आ. रामचंद्र शुक्ल

३. हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार वर्मा

४. हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल

५. हिंदी साहित्य उद्भव और विकास - हजारीप्रसाद द्विवेदी

*****

३

भक्तिकाल की पृष्ठभूमि

इकाई की रूपरेखा

३.० इकाई का उद्देश्य

३.१ प्रस्तावना

३.२ भक्तिकाल की पृष्ठभूमि

- ३.२.१ राजनीतिक परिस्थिति
- ३.२.२ आर्थिक परिस्थिति
- ३.२.३ धार्मिक परिस्थिति
- ३.२.४ सामाजिक परिस्थिति
- ३.२.५ साहित्यिक परिस्थिति
- ३.२.६ सांस्कृतिक परिस्थिति

३.३ सारांश

३.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

३.५ लघुत्तरीय प्रश्न

३.६ संदर्भ पुस्तके

३.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी:

- भक्तिकालीन, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थिति को समझ सकेंगे।

३.१ प्रस्तावना

चौदहवी शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक का समय भक्तिकाल के नाम से प्रसिद्ध है। इस काल को पहला भारतीय नवजागरण काल माना जाता है। जैसे कि नाम से ही ज्ञात होता है कि यह भक्तिकाल के उच्चतम धर्म की व्यवस्था करता है। और भक्तिकाल नामकरण और काल के प्रदीर्घ अध्ययन के प्रारंभ में हम इस काल की पृष्ठभूमि समझ लेना आवश्यक समझते है।

३.२ भक्तिकाल की पृष्ठभूमि

भक्तिकाल में भक्तिकाव्य धारा के साथ काव्य की अन्य परम्पराएं भी प्रचलित रही भागवत भक्ति दक्षिण से होकर उत्तरी भारत भक्ति परम्परा से एक रूप होकर पूरे भारत वर्ष में व्याप्त

हुई । इस काल में भगवान की निर्गुण और सगुण दोनो प्रकार की भक्ति प्रबल रही । तत्कालीन समय में देश के सभी हिस्सों जैसे महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक आदि राज्यों में वहां बोली जाने वाली प्रमुख भाषा में भक्ति साहित्य की रचना हुई। ऐसे में भक्तिकाल का सर्वांगीण अध्ययन के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है तत्कालीन समय का राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्तर या परिस्थिति कैसी थी।

३.२.१ राजनीतिक परिस्थिति:

इस समय भारत में मुस्लिम साम्राज्य अपनी जड़े जमा चुका था किन्तु मुगलों के आपसी मतभेद अफगान से होने के कारण मुस्लिम साम्राज्य हिन्दुओं के साथ सुलह-संबंध बढ़ाकर अपना राज्य दृढ़ करने में लगे हुए थे। सन १३७५ से १५८३ तक दिल्ली में लोधी वंश का शासन था और १५८३ से १७०० तक मुगल वंश के बाबर, हुमायूं अकबर, जहांगीर आदि बादशाहों के शासनकाल रहे । १२९५ में अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली की गद्दी पर बैठा उसने मालवा, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रांतों को जीता। खिलजी की मृत्यु के पश्चात दिल्ली का सिंहासन हिल उठा १३२० में जब गयासुद्दीन तुगलक इस राजसिंहासन पर विराजमान हुए उन्होंने प्रबलता से इस बागडोर को आगे बढ़ाया। धीरे धीरे प्रांतों में स्वतंत्र साम्राज्य की स्थापना हुई, दक्षिण में बहमनी राज्य की स्थापना हुई । मदुरा और बंगाल में दिल्ली सल्तनत के सूबेदार स्वतंत्र सुल्तान बन गये और काश्मीर में शाहमीर ने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया।

१५ वी शताब्दी प्रान्तीय शासकों का युग था । इस काल में राजस्थान और मेवाड़ में महाराणा लाखा चूड़ा और कुंभा शासन की मजबूत शक्ति बने। बुंदेलखंड में गहड़वाल वंशज बुंदेल सरदार राज्य करने लगे इस प्रकार सूर्यवंशी कपिलेंद्र द्वारा उड़ीसा में स्वतंत्र राज्य की स्थापना हुई । १५२६ में बाबर ने पानीपत के मैदान में इब्राहिम लोदी को परास्त किया इसके बाद राणा सांगा को परास्त किया। परंतु कुछ समय पश्चात बाबर के पुत्र हुमायूं को शेरशाह सूरी ने परास्त किया। शेरशाह के समय में ही पद्मावत महाकाव्य की रचना हुई। शेरशाह सूरी के उत्तराधिकारी अयोग्य निकले परिणामत: अकबर जैसे बादशाह के आगमन के पश्चात छोटे-छोटे राजाओं ने अकबर का अधीनत्व स्वीकार कर लिया । मेवाड़ के महाराणा प्रताप के पुत्र अमर सिंह ने १६ वर्ष तक संघर्ष कर अंत में जहांगीर का अधीनत्त्व स्वीकार किया । लेकिन शहाजहाँ के अंतिम दौर में महाराष्ट्र में शिवाजी महाराज और बुंदेलखंड में चंपतराय की सत्ता स्थापित हुई।

३.२.२ आर्थिक परिस्थिति:

भारत में तुर्की आगमन के पश्चात शहरों की स्थापना हुई और कई कस्बों का उदय हुआ शहर और कस्बों में व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे | गांव से कस्बे और कस्बे से शहर ऐसा परस्पर संबध स्थापित हुए। दिल्ली आगरा, इलाहाबाद आदि शहरों का विकास मुगलकाल में ही हुआ। इस दरम्यान शहरों में चरखा, कागज, चुम्बक व उपकरण आदि के विकास के साथ वस्त्र उद्योग और रेशम से बने रेशमी वस्त्र के कारोभार में अनगिनत बढ़ोत्तरी हुई | इसके अतिरिक्त वस्त्रों में कसीदाकारी, कढ़ाई, जरी काम आदि भी महत्वपूर्ण व्यवसाय के साधनों में दर्ज हो गए थे। व्यापार का स्तर इतना बढ़ गया था कि आयात जैस उपक्रम भी इसी काल में प्रसारित हुए भारत से सूती वस्त्र बड़े पैमाने पर निर्यात किया जाता था वहीं

कई देशों से चीनी और चावल का आयात हमारे यहां होता था। इस प्रकार भक्ति काल में व्यापारी वर्ग अधिक सुखी और संपन्न हुआ वहीं मजदूर वर्ग की अवस्था दिन-हीन थी।

३.२.३ धार्मिक परिस्थिति:

भक्तिकाल के धार्मिक परिवेश का अध्ययन करे तो विविध धर्म और संप्रदायों का प्रचलन था। इस काल में वैष्णव धर्म मजबूत हो रहा था वहीं बौद्ध धर्म का विकृत रूप उभर रहा था।

बौद्धधर्म में विविध प्रभाव के फलस्वरूप दो विभाग हुए हीनयान और महायान। हीनयान अपने जटिल नियमों के कारण जनसामन्य के अनुकूल नहीं बन पाया और महायान अपनी अतिव्यवहारिकता के कारण आगे बड़ा इस भाग में समाज के अशिक्षित, निम्न वर्ग के लोग दीक्षित हुए इस सम्प्रदाय ने जनता को व्यभिचार, चमत्कार, जन्त्र- तन्त्र आदि बातों से वशीभूत कर लिया इस सम्प्रदाय को मंत्रयान या वाममार्ग भी कहा जाता है। मंत्रयान ने मद्य, मांस, मैथुन, मुद्रा आदि अनेक निरर्थक तत्वों को अपनाते हुए स्त्री भोग को प्रमुख माना जो समाज पर घिनौना प्रभाव डाल रहा था। इसी मंत्रयान का विकसित रूप वज्रयान के रूप में उभरा। चौरासी सिध्द इसी वज्रयान में दीक्षित हुए सिद्धों ने चमत्कार, जंत्र-तंत्र आदि का विरोध किया और आध्यात्म्य साधना के पक्षधर बन धार्मिक क्रांति का बीज बोया। लेकिन आगे चलकर यह साधना पद्धति भी वकृतियों का शिकार बनी। नाथ पंथियों ने इसे शुद्ध बनाने के लिए भरसक प्रयास किये। नाथों ने पवित्र-साधना पद्धति का प्रवर्तन कर समाज को कई बुराईयों से बाहर निकालने और शुद्धता का प्रतिपादन करने का प्रयत्न किया।

शंकराचार्य के पूर्व ही आलवार संतो ने भक्ति के प्रचार का बीड़ा उठा लिया था। इस समय अनेक धार्मिक संप्रदाय का आविर्भाव हुआ उसमें विष्णु भक्ति की प्रधानता अधिक रही | विष्णु के अवतार रूप में राम और कृष्ण की भक्ति को प्रधानता मिली रामानंद ने भक्ति का मार्ग जन-जन के लिए प्रशस्त कर दिया। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत शैव, शाक्त, सौर, स्मार्त और गणपत्य आदि धर्म का प्रतिपादन भी भक्तिकाल में हुआ। शैव धर्म के अन्तर्गत कई धर्म की गणना होती है नाथ योगी सम्प्रदाय भी इसी के अन्तर्गत आते है।

भारत में मुस्लिम आक्रमणों के साथ सूफी कवियों ने भारतीय आध्यात्मिकता और अद्वैत को अपने ढंग से स्वीकारा। सूफियों ने प्रेम, निराकार, निर्गुण ईश्वर की सत्ता को माना। सूफी संत सच्चरित्र और शांत स्वभाव के थे। भक्ति धर्म के प्रति आस्था के कारण उन्होंने भारतीय जन-जन के मन में स्थान बना लिया था। एक प्रकार से हिन्दू मुस्लिम की विरोध की खाई को मिटाने का अमूल्य कार्य किया।

३.२.४ सामाजिक परिस्थिति:

भक्तिकाल की सामाजिकता वर्ण भेद से घिरी हुई थी। जाति-पाति व्यवस्था अधिक कठोर थी इसी कारण विवाह और खानपान संबंधी नियम कठोर थे। ब्राह्मण वर्ग अहंकारी था। वहीं शुद्र वर्ण की दशा अत्यंत दयनीय होती जा रही थी। शुद्रो के साथ अछूता से व्यवहार होता था। विदेशियों के आगमन जैसे तुर्की, ईरानी, आफगानी और भारतीयों के बीच वैवाहिक संबंध नहीं होते थे। हिन्दू-मुस्लिमों की अपनी दो टुको की विचारधारा ने समाज में असमानता का वातावरण फैला दिया लेकिन भक्ति काल में मुस्लिम और हिंदुओं

सामंजस्यता भी इस काल में देखने को मिली यही कारण था कि श्रीकृष्ण के महिमा का गान मुस्लिम कवियों ने भी किया। स्त्री जाति के लिए यह काल त्रासदी का काल था। हिन्दू कन्याओं को मुस्लिम शासक उनके रूप रंग को देखकर उस हिसाब से कीमत लगाते। कुलीन नारियों का अपहरण कर मनोरंजन करते थे। वहीं हिन्दू शासक भी मुस्लिम नारियों को संगीत नृत्य का प्रशिक्षण देकर मनोरंजन करते। मुस्लिम शासकों के यहां हजारों स्त्रियाँ होती थी स्त्रीयों के रहने के स्थान को हरम कहा जाता था इन सभी दशाओं के कारण ही पर्दाप्रथा और बाल-विवाह जैसी प्रथा प्रचलित हुई। जोहर और सती प्रथा जैसी कुप्रथा भी समाज के इसी अवस्था की देन मानी जाती है। स्त्री जाति चार दिवारी के अंदर अपना जीवन वसर करने के लिए मजबूर हो गई। इस प्रकार समाज जातिगत धर्मगत और नारी की दृष्टि से विक्षिप्त अवस्था पर जा पहुँचा था।

३.२.५ साहित्यिक परिस्थिति:

भक्तिकाल में हिन्दू धर्म के अनुयायी और उच्च वर्ण के लोग संस्कृत भाषा में लेखन कार्य करते थे उनके विचार गद्य रूप में न होकर छन्दोबद्ध रूप में होते थे। मुगलों के आगमन से फारसी भाषा में भी साहित्य रचा गया | संस्कृत के कई धार्मिक और ऐतिहासिक ग्रंथों का फारसी भाषा में अनुवाद हुआ। मुगलकाल में राजकीय काम-काज की भाषा भी फारसी भाषा थी। शेरशाह सूरी कई मुगल राजाओं के साथ भारतीय राजाओं ने हिन्दी भाषा को प्रोत्साहन दिया लेकिन संस्कृत और फारसी के समान हिन्दी भाषा प्रचलित न हुई। राजस्थानी और वज्रभाषा में पद्य के साथ गद्य लेखन भी हुआ। राजा-महाराजाओं के आश्रित कवियों ने उनके गुणगान में वीर और श्रृंगार परक काव्य रचा इसी संदर्भ में कई मुक्तक और प्रबंध काव्यों की रचना हुई अनेक कवियों ने ईश्वर भक्ति में लीन हो आराध्या के जीवन चरित और भाव विचारो से विभोर हो काव्य रचना की वहीं दूसरी ओर कई कवि ऐसे थे जिन्होंने काव्य रचना के माध्यम से समाज सुधार का बीड़ा उठाया उन्होंने समाज में प्रचलित कुप्रथाओं, जातिगत अर्नगलता अन्य आडम्बर, ढोंग पाखंड की आलोचना खड़े शब्दो में की और काव्य रचना के लिए जन-समुदाय में प्रचलित भाषा का प्रयोग किया इन कवियों में – कबीर, दादू, गुरु गोविन्द सिंह, आदि प्रमुख है। सूरदास ने ब्रज भाषा और तुलसीदासजी ने अवधि भाषा में प्रशस्त और अमूल्य काव्य रचकर इन भाषाओं को उच्च दर्जा प्रदान दिया। साहित्यगत सौंदर्य की दृष्टि से भी इस काल साहित्य सर्वोत्कृष्ठ माना जाता है। कबीर, सूर, तुलसी बिहारी, मीरा, मतिराम, आदि कईयों ऐसे कवि है जिन्होंने भक्तिकाल के साहित्य को सभी कालो के साहित्य से सर्वोत्कृष्ठ शिखर प्रदान किया।

३.२.६ सांस्कृतिक परिस्थिति:

भक्ति काल में सांस्कृतिक दृष्टि से समन्वय की भावना दिखी। कला, शिल्प, साहित्य और संगीत में सभी धर्म की समन्वयता थी। योग का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ा भक्ति, ज्ञान और कर्म को भी योग के साथ जोड़ा जाने लगा। वैदिक धर्म के उत्थान से देवी-देवताओं और देवालयों की स्थापना हुई वैष्णव धर्म को प्रश्रय और प्रोत्साहन मिला | मूर्तिपूजा, अवतारवाद, तीर्थाटन और कर्म फल में विश्वास, पौराणिक धर्म पर आस्था इस काल की प्रमुख विशेषता रही जन जन भावनात्मक था | विचारशीलता से भी अधिक समन्वयात्मक प्रवृत्ति धर्म और अन्य तत्वों के साथ मूर्तिकला और वास्तुकला में भी देखी जाने लगी।

खजुराहों के वैद्यनाथ मंदिर के शिलालेख में ब्रह्म बुद्ध तथा वामन को शिव रूप में चित्रित किया है। ऐलोरा के समीप कैलाश मंदिर में शिव की मूर्ति के सिर पर बोधिवृक्ष है।

इस प्रकार तत्कालीन समय में धर्म सम्प्रदाय की अधिकता थी लेकिन विरोधी स्तर के साथ दूसरा स्वर सामंजस्य कर अपनी साख जमाने लगा था।

३.३ सारांश

भक्तिकाल में समाज में सर्वाधिक धर्मो का, भाषाओं का सांस्कृतिक सृजन हुआ है। सभी मत अपना अलग राग अलापते हुए भी विद्रोही नहीं बने यही कारण है कि भक्तिकाल को साहित्य का सुवर्ण युग माना जाता है। समाज में कुप्रथा, जाती प्रथा थी तो उनकी अवहेलना के लिए प्रखर कवि भी थे। सूर और तुलसी जैसे कवि एक भाव से भक्ति की पताका पराकाष्ठा पर सुशोभित कर रहे थे, मीरा, रहीम, रसखान एकनिष्ठ भक्ति को दर्शा रहे थे। वहीं कबीर, दादू, गुरु गोविन्द, दयाल आदि कवि समाज सुधार का कार्य कर रहे थे। इसीलिए भक्तिकालीन साहित्य आत्मा को तृप्ति देता है।

३.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. भक्तिकालीन परिवेश की विस्तार से चर्चा कीजिए।

२. समन्वयवाद की दृष्टि से भक्तिकाल की पृष्ठभूमि का विवरण दीजिए।

३.५ लघुत्तरीय प्रश्न

१. गणपति चंद्र शुक्ल ने भक्तिकाल को क्या नाम दिया है?

उत्तर: पूर्वमध्यकाल

२. आचार्य रामचंद्र शूक्ल ने भक्तिकाल की कालावधि निर्धारित की है?

उत्तर: १३९२ से १६४३ तक

३. भक्तिकाल की पृष्ठभूमि में शहरों का विकास कौनसे शासनकाल में माना जाता है?

उत्तर: तुर्की शासनकाल

४. ऐलोरा के समीप कैलाश मंदिर में शिव की मूर्ति के सिर पर क्या स्थित है?

उत्तर: बोधी वृक्ष

३.६ संदर्भ पुस्तके

- हिंदी साहित्य का इतिहास - आ. रामचंद्र शुक्ल
- हिंदी साहित्य का इतिहास - सम्पादक डॉ. नगेन्द्र
- हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
- हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. जयकिशन प्रसाद

*****

४

संत काव्य : परम्परा और प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

४.० इकाई का उद्देश्य

४.१ प्रस्तावना

४.२ संतशब्द का अर्थ व व्युत्पत्ति

४.३ संत मत व संत परम्परा

४.४ संत काव्य की प्रवृत्तियाँ

४.५ सारांश

४.६ बोध प्रश्न या दीर्घोत्तरी प्रश्न

४.७ लघुत्तरीय प्रश्न

४.८ संदर्भ पुस्तकें

४.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी संत काव्य (ज्ञान मार्गीय शाखा) का अध्ययन करेंगे। इसके अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी:

- संत शब्द का अर्थ जान सकेंगे।
- संत काव्य परम्परा का अध्ययन कर सकेंगे।
- संत काव्यधारा की विशेषताओं को समझ सकेंगे।

४.१ प्रस्तावना

यह इकाई ज्ञानमार्गीय धारा से संबंधित है जिसे संत काव्य धारा भी कहा जाता है। संत काव्य धारा के कवियों ने लोक-चेतना, लोक-धर्म को ध्येय मानकर काव्य कृति की। तत्कालीन समय की सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियाँ विपरीत होते हुए भी संत कवियों ने बेधड़क समाज की सभी कुरीतियों, कुण्ठाओं से ग्रसित जन-जन को जागृत करने का मौलिक कार्य किया। और सिर्फ कवि की भूमिका न निभाकर समाज सुधारक की भूमिका निभाई। यही कारण है कि भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग है।

४.२ संत शब्द का अर्थ व व्युत्पति

संत शब्द का शाब्दिक अर्थ है विरक्त निष्काम जो भोग विषयादि से दूर हो। संत शब्द की उत्पत्ति संत शब्द से हुई है जिसका अर्थ अस्तित्व है जिसे श्री मद् भागवत गीता में 'ॐ

तत्सत' कहा गया है इसके अंतर्गत संत का अर्थ सद्भाव, साधुभाव या उच्चकर्म करने वाले के लिए प्रयोग हुआ है।

श्री प्रभाकर माचवेजी ने आज के समय में साधारण जन मानस के विचार में संत शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है। "संत शब्द से आजकल स्त्री - पुरूषादि - परिवार - गृहस्थी छोड़कर दुनिया से विरक्त मनुष्य की कल्पना सामने आती है। जिसने दुनिया से पीठ फेर ली है, बदन में राख मली है, जटाएँ बढ़ा ली है, ऐसे मनुष्य को संत साधु वैरागी कहने की प्रथा प्रचलित है।"[१]

इस प्रकार हम कह सकते है कि संत शब्द का प्रयोग हम उन विशेष व्यक्तियों के लिए करते है जो अपना जीवन स्वयं हेतु न मानकर सामाजिक हित में व्यतीत करते है। सत्य, न्याय, अहिंसा, सदाचार आदि अनेक अच्छाईयों को जीवन मूल्य मानकर समाज के और जन जन के लिए प्रेरणा स्रोत बन जाते हैं।

संत शब्द की व्युत्पत्ति से संबंधित विचार पितांबरदत्त बड़थ्वाल जी ने व्यक्त करते हुए कहा कि 'संत शब्द की संभवत: दो प्रकार की व्युत्पत्ति हो सकती है या तो उसे पाली भाषा के उस शांत शब्द से निकला हुआ मान सकते है। जिसका अर्थ निवृत्ति मार्गी व वैरागी होता है। अथवा यह उस संत शब्द का बहुवचन हो सकता है जिसका प्रयोग हिन्दी में एकवचन जैसा होता है और जिसका अभिप्राय एक मात्र सत्य में विश्वास करने वाला अथवा उसका पूर्णत: अनुभव कर लेने वाला व्यक्ति समझा जाता है।'[२]

४.३ संत मत एवं संत परम्परा

कालक्रम की दृष्टि से भक्तिकाल का प्रारंभ १३ वीं शताब्दी से माना जाता है जिसे साहित्य का मध्यकाल भी कहा जाता है। मध्यकालीन समाज व्यवस्था में सामंतवाद, रूढिवादिता, जटिल जातिवाद व्यवस्था और उच्चवर्ग और निम्न वर्ग के बीच बढ़ती अथांग दूरीयाँ सामाजिक असमानता और व्यवस्था से सने समाज का चित्र प्रस्तुत करता है। ऐसी परिस्थिति में भक्ति आंदोलन विद्वानों की दृष्टि में एक क्रांतिकारी घटना है। सामाजिक परिवेश को देखते हुए भक्ति आंदोलन की शुरुवात ही निर्गुण काव्य परंपरा से मानी जाती है। निर्गुण काव्य परम्परा में ईश्वर की प्राप्ति का प्रमुख मार्ग ज्ञान और प्रेम को माना गया। ज्ञान मार्गी काव्य संत काव्य कहलाया और प्रेम मार्गी काव्य सूफी काव्य कहलाया।

भक्ति आंदोलन के प्रवाह में वर्ग, वर्ण, नस्ल, धर्म और लिंग के मतभेदों को भुलाकर मानव मात्र एक समान की अवधारणा को बल मिला। संत साहित्य मानवता का पुर्नउत्थान है जिसमें मनुष्य द्वारा प्रेषित द्वेष, वैमनस्य, असमानता और दुर्भावनाओं को कोई स्थान नहीं है। संतो के संबंध में डॉ. वासुदेव सिंह कहते है – "संतवाणी केवल सामायिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया मात्र नहीं है। यह गंभीर चिंतन और अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति है। इसी कारण यह काव्य आज भी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर उपादेय और प्रासंगिक है।"

संत साहित्य जन-जन का साहित्य है। संतो ने जो रचनाओं के माध्यम से उपदेश देकर जन जागृति का प्रयास किया और इस प्रयास में अथाह सफलता भी हासिल की संत साहित्य

का, महत्व और इसकी उपयोगिता सिर्फ साहित्य क्षेत्र तक ही संकुचित न बनी रहकर सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्र को भी झकझोर कर रख देती है।

संतो ने केवल एक ही मार्ग का अवलोकन किया वह मार्ग है जन कल्याण का मार्ग इस सुदृढ मार्ग में मंगल-कामना का भाव, प्रताड़ित मानवीय चित्रण, शोषित सामाजिक चित्रण के साथ-साथ अध्यात्मिक भावनाओं और सदाचरण की स्पष्ट व्याख्या का प्रति रूपित कर आत्मानुभूति की प्रमाणिकता का प्रत्यक्ष रुप परिलक्षित होता है इस विषय में डॉ. नगेन्द्र लिखते है- "धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक सांस्कृतिक परम्पराओं का अंधानुसरण न कर इन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था के विरोध, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा आदि की निंदा, सदाचारादि गुणों की प्रतिष्ठा, शास्त्रीय ज्ञान की अनिवार्यता के निषेध, आत्मानुभूति की प्रमाणिकता आदि पर बल दिया। संत काव्य साधना में तत्पर एवं सर्वजन में मंगल कामना करने वाले भक्तो के सरल ह्रदयों की सहज अनुभूति का चित्रण मात्र है।"[३]

इस प्रकार संत साहित्य समाज के प्रति समर्पित सजग साहित्य है। इसका विराट स्वरूप तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त वर्णाश्रम व्यवस्था, ऊँच-नीच भेदभाव की भावना, अमानवीय वर्ग वैशम्य आदि अनेक कुप्रचलनाओं को अधीन करने के लिए बैचेन थी। संत कवियों ने धार्मिकता के आधार पर व्याप्त वाह्याडम्बरो का, पाखंडो का व्यंगात्मक तौर पर प्रहार कर उध्वस्त किया, धर्मगुरुओं के साम्रज्य हिलाकर प्रेम की भावना का उद्घोष किया वही लोक संस्कृति का जय घोष कर अभिजात्य संस्कृति को निराधार किया और समाज में फैले असंतोष के वातावरण में नव स्फूर्ति और दृढ़ विश्वास का प्रसार हर एक जन के मन में स्थापित किया।

प्रमुख संत कवि - संत कबीरदास, स्वामी रामानंद, नामदेव, दादूदयाल, रैदास, गुरुनानक, जयदेव आदि।

४.४ संत काव्य की प्रवृत्तियाँ

संत काव्य सामाजिक चेतना का काव्य है, समाज सुधार का काव्य है। संतो की प्रमुख प्रेरणा, ज्ञान और भक्ति का योग है जो रहस्यवाद और आध्यात्मिक दृष्टिकोण को सुदृढ़ करता है। संत काव्य धारा की विस्तृतता केवल काव्यानंद के लिए नहीं है। यह समाज को राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आचरण का ज्ञान देती है। इस प्रकार चिन्तन वादी विचारधारा का अनुसरण करते हुए सभी संत कवियों ने अपनी अपनी शैली में महाज्ञान वादी विचारों को साहित्य में पिरोया और समाज को अंधकार रूपी विचारो से सदाचार रूपी प्रकाश में लेकर आये। संत काव्यधारा के अध्ययन से हम निम्नलिखित प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर सकते है।

समाज सुधार की भावना:

मध्य भक्तिकालीन परिवेश के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि तत्कालीन समय की सामाजिक जीवन व्यवस्था, धार्मिक प्रयोग वादिता किस प्रकार से लोकजीवन में प्रचलित था। समाज में भावात्मक एकता स्थापित करने का प्रयत्न और प्रारंभ संत कवियो द्वारा हुआ यह उन्होने जन जीवन में मानसिक परिवर्तन, मानवतावाद, सदाचार, दलितोद्धार,

दार्शनिकता का निरुपण, पूजा अर्चना आदि क्षेत्रो में जन-भाषा का प्रयोग कर समाज सुधार भावना को प्रोत्साहित किया संत वह महापुरुष थे जिन्होने लोक कल्याण के लिए सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। उनका सामाजिक, धार्मिक ज्ञान, उनके कर्म और भक्ति साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत है जो आज भी साहित्य रूपी भंडार से, जीवन और भक्ति का ज्ञान हमे दे रहा है।

मूर्ति पूजा का विरोध:

ज्ञानाश्रयी काव्यधारा रूढियों आडंबरो, अंधविश्वासों का डटकर विरोध किया है। निर्गुण विचारधारा में मूर्तिपूजा और धर्म की आड़ में हो रही हिंसा और अन्याय का विरोध कर सदाचार और समानता की भावना को जन जन के सम्मुख प्रस्तुत किया | व्रत, रोजा, तीर्थ, विधि - विधान को अवांछनीय मानकर वास्तविक धर्म को आचरण में लाने की बात कही। संतवादी काव्य ने राजा से रंक और ब्रह्मण से शुद्र तक सभी को समाज में एक स्तर का मानकर समानता स्थापित करने का प्रयास किया। विभिन्न संतो ने अपनी वाणी में इस प्रकार धार्मिक आडम्बर और मूर्ति पूजा का विरोध किया है।

गुरु नानक देव:

१) "पूजि सिला तीरथ बनवास, भरमत डोलत भये उडाया ।"

मनि मैले सूचा किड होई, साचि मिलै पावै पति सोई ।

२) कबीरदासजी

पत्थर पूजै हरि मिलें, तो मैं पूजूँ पहाड़ ।

ताते वह चाकी भली, पीस खाय संसार ।

३) मूँड मुडाए हरि मिलै, सब कोई लेहि मुँडाय

बार बार के मूँड़ते, भेड़ वैकुंठ न जाय ।।

माया के प्रति सचेतता:

संत कवियों ने माया को आत्मा से परमात्मा से मिलने के रास्ते में सबसे बड़ा गतिरोध माना। माया आत्मा को मलीन करती है। सदाचार के पद को भ्रष्ट कर देती है। कबीरदासजी तो माया को महाठगिनी मानते हुए कहते है – "माया तो ठगनी भई, ठगत फिरै सब देत संत रविदास माया से बचने का एक ही उपाय सुझाते हुए राम नाम की भक्ति का उपदेश देते है।"

'रे मन राम नाम संभारि।

माया के भ्रिम कहाँ मूल्यों, जाहिगौ कर झारि।'

जाति प्रथा का विरोध:

मध्य कालीन भारतीय समाज वर्ग-भेद की भावना से त्रस्त था। जाति और जन्म के आधार पर समाज कई भागों में बँट गया था। समाज को इस भयंकर समस्या से उभारने का कार्य संत कवियो द्वारा हुआ। संत कबीर का निर्भिक और अक्खड़ स्वभाव हमेशा सदाचार और सत्य के आगे सक्षम रूप लिए खड़ा रहा। उन्होने संसार के सभी मनुष्यों की उत्पति एक ही ज्योति से मानी और जाति प्रथा का डटकर विरोध करते हुए कहा है।

एकै पवन एक ही पानी, करी रसोई न्यारी जानी।

मानी तूँ माटी ले पोती, लागी कहाँ कहाँ धूँ छोती॥

अंधविश्वास व वाह्याडंबर का विरोध:

मध्यकालीन समाज की धार्मिक अवस्था अंधविश्वास और वाह्याडंबरों से परिपूर्ण थी। वैदिक धर्म में यज्ञ अनुष्ठान प्रचूर मात्रा में होते थे यह कर्म काण्ड केवल ब्रह्मण वर्ग द्वारा कराये जाते थे। सामान्य जनता को बल, उत्साह, एश्वर्य और मोक्ष का लालच देकर मन माना धन दक्षिणा के रुप में लिया जाता था। पाप और पुण्य की व्याख्या कर जन सामान्य को मुर्ख बनाया जाता था।

संत कवियों ने इस प्रकार के सभी कर्मकाण्ड यज्ञ, तीर्थ जप-तप, माला फेरना, मूर्ति पूजा, व्रत, प्रवास सेवा आदि का विरोध कर जन जन को समझाते हुए कहा -

“क्या जप क्या तप संयमी क्या व्रत क्या इस्नान।

जब लग जुक्ति न जानियै गाव भक्ति भगवान॥”

“रोजा धरै निवाजु गुंजारै, कलमा मिस्त न होई।

सत्तर काबा घर ही भीतर जे करि जानै कोई॥”

संत काव्य में मूर्ति पूजा का डटकर विरोध हुआ है:

“हम भी पाहन पुजते, होते रन के रोझ।

सतगुरु की कृपा भई, डारया सिर थै बोझ॥”

इसी प्रकार संत कवियों का मानना है कि सिर के केश निकालने से कोई साधू पंडित नहीं बनता है और न ही ईश्वर की प्राप्ति होती है।

“कैसौ कहा बिगाडिया जे मूड़े सौ बार।

मन कौ न काहे मूड़िए, जामै विषय विकार॥”

भक्ति निरूपण:

संत कवियों का मार्ग कर्मभूमि या और उद्देश्य सामाजिक एकता और जन -जन के हृदय में प्रेम और क्षृद्रा का तत्व एक दूसरे के प्रति हो इसी आधार पर संत कवियों में अनुभूति पक्ष की प्रधानता रही है। संत कवियों का ज्ञान और निर्गुण ब्रह्म अवतार वाद और मूर्तिपूजा अस्वीकार करता है। संतो की भक्ति परब्रह्म परमेश्वर क भक्ति है। संतो की भक्ति आत्मा से परमात्मा का मिलन मार्ग है जो आध्यात्मिक दिशा को सुनिश्चित करता है। साथ ही क्योंकि भक्ति हृदय की युति है। जो ईश्वर का सामीप्य प्राप्त कर आनंद शांति, मोक्ष की और उन्मुख होती इसीलिए संत कवियों ने निर्गुण भक्ति को निष्कामना भक्ति माना और इस प्रकार शब्दों में प्रतिबद्ध किया है।

"अकश कहानी प्रेम की कछू कही न जाय।

गूंगे केरी सरकरा, खाए और मुसकाय॥"

सदगुरु की महिमा:

संत कवियों ने परब्रह्म ईश्वर के मार्ग के साक्षात्कार के लिए सद्गुरु का होना आवश्यक माना है। संत कवियों का मानना है यदि गुरु की कृपा हो तो शिष्य संसार के बंधनों से मुक्ति पा सकता है। संत कवियों ने गुरु को ज्ञान का अपार सागर माना और गुरु ज्ञान की मूर्ति है, कृपा के सागर और गुरु स्वयं परब्रह्म परमेश्वर है। गुरु शिष्य को उपदेश के द्वारा हर शंका का निरासन करता है, और जीवन आनंद की शाश्वती गुरु की कृपा से ही होती है इसीलिए गुरु को हमेशा स्मरण में रखना चाहिए। संत कवियों ने गुरु की महिमा का गान इस प्रकार किया है:

"परमेश्वर व्यापक सकल, घट धारे गुरुदेव।

घट घट उपदेश दे, सुन्दर पावै पद॥"

अंतकरण में विचारों की शुद्धि करने वाले गुरु ही है। भ्रम, दु:खों का नाश कर जीवन में ज्ञान रूपी प्रकाश गुरु से ही मिलता है।

"गुरु तिन ज्ञान नहीं, गुरु बिन ध्यान नहीं

गुरु बिन आत्मा विचार न लहतु है॥"

"गुरु बिन बाट नहीं, कौडा बिन हाट नाहिं।

सुंदर प्रकट लोक वेद थौ कहतु है॥"

नारी के प्रति दृष्टिकोण:

सभी संत वैवाहिक जीवन में बंधै रहे। नारी के प्रति संतकाव्य वैचारिक दृष्टिकोण अपनाता है। प्रतिव्रता नारी की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते है और नारी को मायावीनी मान कनक और कामिनि को मोक्ष के रास्ते का सबसे बड़ा बंधन मानते है। कबीर कहते है।

"नारी की झाई परत, अंधा होत भुजंग।

कबिरा जिन की कहा गति नित नारी संग॥"

"पतिवरता मैलीभली काली कचील कुरुप।

पतिवरता के रुप पै वारी कोटि स्वरूप॥"

संत काव्य में राम:

संत कवियों के राम साकार मुर्ति नहीं निराकार ब्रह्म रुप है। लेकिन ईश्वर के नाम की महत्ता को संत कवि स्वीकार करते है। तुलसीदास के राम साकार मूर्ति रूप है लेकिन कबीर के राम अन्तर आत्मा में निहित परब्रह्म है दोनो राम एक जैसे नहीं है। लेकिन उपासक के मन को आनंद और शांति दोनों राम बराबर देते है। कबीर के राम निर्गुण राम की अनुभूति राम नाम के ध्यान मात्र से हो जाती है। कबीर के राम भाव गम्य है। वे श्री राम दशरथ के पुत्र है यह भी स्वीकार नहीं करते -

"दशरथ सुत तिहु लोक बखाना

राम नाम का मर हम आना॥"

अवतार वाद और बहुदेव वाद का विरोध:

संत कवि अवतार वाद और बहुदेव वाद का विरोध करते है क्योंकि इनकी भक्ति भावना ईश्वर के स्वरूप को स्वीकार नहीं करती तो अवतार को कैसे मान सकती है। संत कवि एकेश्वरवाद पर विश्वास करते है। ईश्वर परब्रह्म है और हर एक प्राणी की आत्मा में निहित है। उसके स्मरण मात्र से प्राणि का कल्याण हो सकता है। इस संबंध में महत्वपूर्ण लेख हमे कबीर पुर्नपाठ / पुर्नमूल्यांकन संत परमानंद श्रीवास्तव में मिलता है जो इस प्रकार है - 'उन्होंने समस्त व्रतो, उपवासों और तीर्थो को एक साथ अस्वीकार कर दिया। इनकी संगति लगाकर और अधिकार भेद की कल्पना करके इनके लिए भी दुनिया के मान सम्मान की व्यवस्था कर जाने को उन्होंने बेकार परिश्रम समझा। उन्होंने एक अल्लाह, निरंजन, निर्लेप के प्रति लगन को ही अपना लक्ष्य घोषित किया। इस लगन या प्रेम का साधन यह प्रेम ही है और कोई मध्यवर्ती साधन उन्होंने स्वीकार नहीं किया। प्रेम ही साध्य है, प्रेम ही साधन, व्रत भी नहीं, मुहर्रम भी नहीं, पूजा भी नहीं, नमाज भी नहीं, हज भी नहीं, तीर्थ भी नहीं।"

"सहजो सुमरिन कीजिये हिरदै माहि छिपाई।

होठ होठ सूं ना हिलै सकै नहीं कोई पाई॥"

"मो को कहाँ ढूँढ़े बदे मै तो तैरे पास में।

ना मैं देवन, ना मैं मस्जिद, न कावे कैलास में॥"

प्रेम का महत्व:

प्रेम का महत्व सूफी मत में अधिक परिलक्षित होता हैं। संत कवियों ने परमात्मा को प्रियतम और स्वयं को प्रियतमा के रूप में प्रस्तुत कर प्रेम की महिमा का गान किया। क्योंकि संत कवियों ने शास्त्रानुमत ज्ञान की अपेक्षा प्रेम की सराहना की प्रेम से ही मानव मानव को जान सकता है उसका आदर करता है। प्रेम से सदाचार और सद्भावना समाज में अपनी सर्वोपरि जगह बनाती है।

"जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, पुनि रसना नहीं राम।

ते नर इस संसार में, उपजि बये बेकाम॥"

रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ:

ज्ञानमार्गी संत कवि अपने अथाह ज्ञान से निराकार ईश्वर का अनुकरण कर आत्मा से परमात्मा के मिलन का अद्भुत प्रदर्शन किया और इसी भाव को रहस्यवादी कहा गया है। रहस्यवाद के पहले चरण में आत्मा परमात्मा की और आकर्षित होती है। दूसरे चरण में यह आकर्षण बढ़ता है और तीसरे चरण में आत्मा परमात्मा के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित हो जाता है। रहस्यवाद को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस प्रकार शब्द बद्ध किया है। 'आत्मा परमात्मा का जो अभेद है तथा जो ब्रह्मोन्मुखी प्रवृत्ति है, साधन के क्षेत्र में जिसे अद्वैतवाद कहते हैं, काव्य में उसे ही रहस्यवाद कहते हैं।" आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है निष्कर्षत: आत्मा परमात्मा एक ही है उनके बीच मोह, माया, विकार का नाश होते ही आत्मा परमात्मा का मिलन हो जाता है। इस संबंध में रैदास कहते हैं।

"सब में हरि है, हरि में सब है, हरि अपनी जिन जाना।

साखी नहीं और कोई दूसरा जानन हार सयाना॥"

"जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहिर भीतर पानी।

फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यहु तत कथ्यौ गियानी॥"

अद्वैतवाद:

समाज चिन्तन के प्रत्येक क्षेत्र में भारतीय संतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सांसारिक जीवन का एक-एक तत्त्व स्वयं जीवन क्षण भंगुर करता है। सदाचार के पद को भ्रष्ट कर देता है। सब में मानव फिर भी सर्वोत्कृष्ट ही संत ज्ञान का अपार भंडार है वे अपने ज्ञान की शक्ति से मानव और समाज का समुचित विकास की पूर्णता की कामना करता है। संतो की साधना में ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग की पूर्णता के साथ राज योग, हठयोग, मंत्रयोग का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग हुआ है। इस प्रकार सभी संतों ने मध्यवर्ती सहज मार्ग को अपनाया और विश्व कल्याण की भावना को शिरोधार्य रखा इसीलिए शंकराचार्य के अद्वैतवाद का सिद्धांत संतो ने सहृदय से स्वीकार कर आज साहित्य की अमूल्य देणगी बन गई। जिसमें आत्मा और परमात्मा के मध्य केवल एक माया का आवरण है जिसे ईश्वर की उपासना, आराधना से हटाया जा सकता है।

"पावक रूपी सांइयां, सब घटा रहा समाय।

चित चकमक लागे नहीं, ताते बुझ बुझ जाय॥"

दार्शनिक दृष्टि:

संपूर्ण हिन्दी संत साहित्य दार्शनिक काव्य है। सभी संत सारग्राही ये उन्होंने शुद्ध दार्शनिक चिन्तन के विचारों की आत्मानुभूति के स्तर पर आत्मसात किया और सभी संतों का एक ही मत था। सद्गुरु के मिलने से ही मानव का उद्धार होता है उसे मुक्ति प्राप्त होती है। संतो का दर्शन शास्त्रीय दृष्टिकोण एक मात्र ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करता है यह विचार वेदों, उपनिषदों और दार्शनिक विचारों के अनुरूप ही है कबीर कहते हैं :

"कहँ कबीर विचार करि, जिन कोऊ खोजे दूरि।

ध्यान धरौ मन शुद्धि करि, राम रह्या मरि पूरि॥" (कबीर बीज--)

कला पक्ष:

सभी संत कवि अधिकांशतः निम्न वर्ग से संबद्ध थे, पांडित्य, प्रगाढ़ ज्ञान, संस्कृत भाषा या काव्य की शिक्षा, दीक्षा के कोई अवसर इन्हें प्राप्त नहीं हुए। सभी संत कवियों का भाव वादी दृष्टिकोण था। इनका प्रयोजन साहित्य रचना न होकर नव समाज रचना या इसीलिए इनका ध्यान कला पक्ष की ओर बंधित नहीं हुआ। भाषा और व्याकरण इनके साहित्य में लाचार कभी नहीं हुई, कभी सहजता से कभी कुशलता से जैसा चाहा वैसे भाषा का प्रयोग किया।

भाषा:

संत कवियों ने अपनी बोलचाल की भाषा का प्रयोग काव्य कला के लिए किया जो लोक जीवन की सादगी समेटे हुए थी। क्योंकि संत काव्य समाज सुधार का काव्य है। भाषा भी जन जन को परिचित हो ऐसी थी । संत कवियों ने ब्रज, अवधि, भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी, हरियाणवी, पंजाबी, खड़ी बोली, अरबी, फारसी, उर्दु, सिंधी, निमाडी आदि शब्दावली का प्रयोग किया । कबीर पढ़े लिखे नहीं थे इसीलिए उनकी भाषा का निर्णय करना बहुत कठिन कार्य है उनकी भाषा में अक्खड़ता है, विद्वान इसे गँवारू भाषा कहते हैं। लेकिन सत्य यही है कि संतकवियों की भाषा जनभाषा और जनशक्ति है जिसमें नीहित भाव आज भी लोक व्यवहारिक जीवन को जागृत करती है।

"का भाषा, का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच।

काम जो आवे कामरी, का लै करै कमाच॥"

४.५ सारांश

संत काव्य परम्परा भक्ति भावना से प्रेरित काव्य है लेकिन संत काव्य की आसक्ति ईष्ट की ओर न होकर समाज के प्रति थी । क्योंकि तत्कालीन समय का समाज धर्म, जाति,

विपृश्यता से जूझ रहा था। समाज को आवश्यकता थी। मार्गदर्शक की और सहिष्णुता की संत कवि मार्गदर्शक के रूप में सामने आये। अपनी शैली में काव्य रचना कर समाज को हितार्थ और जन-जन के पुरूषार्थ, स्वाभिमान आदि आवश्यकताओं पर भर दिया। संतो की भाषा लोक-भाषा थी इसका उद्देश्य यही था कि संतो की वाणी जन-जन को समझे और समाज उन्हें सुनकर उसका अनुसरण करे उन विचारों को अपनाये।

४.६ बोध प्रश्न या दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) संत शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए संत परम्परा का परिचय दीजिए।

२) संत काव्य की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

४.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१) संत शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है?

२) दादू दयाल का संबंध किस राज्य से है?

३) स्वामी रामानंदजी ने कौनसे संप्रदाय की स्थापना की?

४) 'रोहिदास' कौनसे संत कवि की रचना है?

५) संत नामदेव ने हिन्दी के साथ अन्य कौनसी भाषा में भजन गान करते थे?

४.८ संदर्भ पुस्तकें

१) संत काव्य संग्रह - परशुराम चतुर्वेदी

२) संत काव्य - डॉ. प्रवेश विरमाणी

३) हिन्दी और मराठी का निर्गुण संत काव्य - डॉ. प्रभाकर माचवे

४) हिन्दी काव्यधारा - राहुल सांकृत्यायन

५) मध्यकालीन हिन्दी काव्यभाषा - रामस्वरूप चतुर्वेदी

*****

५

सूफी काव्य : परम्परा एवं विशेषताएँ

इकाई की रूपरेखा

५.० इकाई का उद्देश्य

५.१ प्रस्तावना

५.२ सूफी शब्द का अर्थ

५.३ सूफी मत एवं संप्रदाय

५.४ सूफी काव्य की विशेषताएँ

५.५ सारांश

५.६ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

५.७ लघुत्तरीय प्रश्न

५.८ संदर्भ पुस्तकें

५.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत सूफी काव्यधारा का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन पश्चात विद्यार्थी:

- सूफी शब्द का अर्थ समझ सकेंगे।
- सूफी मत की अवधारणा को विस्तृत जान सकेंगे।
- सूफी काव्य की विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे।

५.१ प्रस्तावना

इस इकाई में हम सूफी काव्य का अध्ययन कर रहे हैं जिसे प्रेम मार्गी काव्य धारा भी कहा जाता है। और सूफीयों को प्रेम की पीर के गायक कहा जाता है जिसके द्वारा मानव के बाहरी आवरण पर नहीं मन और कर्म की शुद्धता पर बल देती है उन्हें पवित्र करने का कार्य सूफी काव्य करता है। आत्मा का साक्षात्कार परमात्मा से करा देता है यही कारण है कि सूफी काव्य मानवतावादी दृष्टिकोण के प्रति सजग दृष्टि रखता है।

५.२ सूफी शब्द का अर्थ

विद्वानों के अनुसार सूफी शब्द की उत्पत्ति अनेक शब्दों से मानी गयी हैं। यह शब्द है सुफ्फा, सुफ, सफ, सफा - 'सफा' का शाब्दिक अर्थ है पवित्र। सभी सूफी कवि मन, कर्म, वचन से पवित्र थे और आचरण की शुद्धता उनमें व्याप्त थी इसीलिए सफा शब्द का रूपान्तर

सूफी में कर इन कवियों को सूफी कहा गया। इस संबंध में हुजेरीजी ने कहा हैं - मूलतः सफा शब्द से ही सूफी शब्द बना है - जो लोग पवित्र थे - वे 'सूफी' कहलाये।

१. **सुफ्फा:** तीर्थ क्षेत्र मदीना में मस्जिद के सामने सपोफा नामक चबुतरा था वहाँ हजरत मुहम्मदजी अधिकांश समय परमात्मा में लीन रह व्यतीत करते थे। उनके साथ अन्य संत भी अपना समय परमात्मा की आराधना करते हुए वही व्यतीत करते थे। इस प्रकार सुफ्फा चबुतरे पर बैठने वाले संत सूफी कहलाये।

२. **सफ:** 'सफ' का शाब्दिक अर्थ है प्रथम अर्थात सबसे आगे या अपने कर्म और सदाचार से अपना एक अलग स्थान बनाने वाले समाज में विशिष्ट स्थान पर जो हैं उन्हें सफ अथवा सूफी कहा गया।

३. **सोफिया:** सोफिया शब्द का अर्थ होता है 'ज्ञान' सभी कवियों ने अपने ज्ञान और तपस्या से जो मुकाम हासिल किया और समाज को नयी दिशा दी इसीलिए इन्हें सूफी कहा गया।

४. **सुफाह:** गियामुल लुगात नामक ग्रंथ में सुफाह शब्द से सूफी शब्द की उत्पत्ति मानी गयी है जिसमें कहा गया है कि जाहीलिया काल में एक ऐसी प्रजाति जिसका वास्तव्य अरब देश में था जो सांसारिकता से अलग मक्का के देवालय में सेवा-भाव में लगे हुए थे।

सोफिस्ता:

यह ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है वैराग्यवादी अर्थात जिसने सांसारिकता से वैराग्य ले लिया है और आध्यात्म और परमात्मा की तरफ उन्मुख हुआ हो। इसी कारणवश सोफिस्ता सूफी कहलाये।

सूफ:

अनेक विद्वानो ने सूफी शब्द की व्युत्पत्ति 'सूफ' शब्द से मानी है जिसका अर्थ है 'ऊन'। इस धारणा के अनुसार मोटे ऊन के कपड़े पहनकर परमात्मा की भक्ति में लीन रहने वाले सूफी कहलाये। सूफ शब्द के संबंध में विचारक परशुराम चतुर्वेदी जी ने लिखा है - 'सूफ एवं सूफी के बीच सीधा शब्द साम्य दिखता है ऐसे लोग अपने इन वस्त्रों के पहनावे और व्यवहार द्वारा अपना सादा जीवन तथा स्वेच्छा दारिद्र्य भी प्रदर्शित करते थे। ये लोग परमेश्वर की उपलब्धि को ही अपना एक मात्र ध्येय मानते थे।'

जायसी ग्रंथावली में सूफी मत की व्याख्या आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस प्रकार दी है – "आरंभ में सूफी एक प्रकार के फकीर या दरवेश थे, जो खुदा की राह पर अपना जीवन ले चलते थे, दीनता और नम्रता के साथ बड़ी फटी हालत में दिन बिताते थे। ऊन के कंबल लपेटे रहते थे। कुछ दिनों तक तो इस्लाम की साधारण धर्म शिक्षा के पालन में विशेष त्याग और आग्रह के अतिरिक्त उनमें कोई नई बात या विलक्षणता नहीं दिखाई पड़ती थी। पर ज्यों ज्यों ये साधना के मानसिक पक्ष की ओर अधिक प्रवृत्त होते गए, त्यों त्यों इस्लाम के

बाह्य विधानों से उदासीन होते गए। फिर तो धीरे धीरे अंतःकरण की पवित्रता और हृदय के प्रेम को मुख्य कहने लगे और बाहरी बातों को आडंबर।"

निम्न लिखित सभी शब्दों के अर्थ और विद्वानों की मान्यता सूफ शब्द से ही सूफी शब्द की व्युत्पत्ति मानते है। इन विद्वानों में अवूनअल सर्राज, लुई मासियो, अलबरूनी, ब्रउन, नोएल्दके, अलकलावाघी, मारगोलिय, आरबरी, निकल्सन, इब्जरकदुन अनेक पाश्चात्य विद्वान और मुस्लिम आलिद भी सूफ (ऊन) शब्द से सहमत है। इस विषय में अल सर्राज ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है - 'ऊन का उपयोग सन्त, साधक व पैगम्बर लोग करते आये है। विभिन्न हसीदों और विवरणों से भी यह तथ्य सिद्ध हो चुका है। ऊनी लिबास धारण करनेवाले को दृष्टि में और ईश्वर के चिन्तन में एकान्तिक जीवन व्यतीत करनेवाले साधको को दृष्टि में रखकर यदि उन्हें सूफी कहा गया तो इसमें कोई असंगति नहीं मालूम होती।' अल सर्राज और अन्य अधिकांश विद्वानों का यही मत है उस समय के संतो ने चमक-धमक और अन्य साज-सजावट को छोड़ ऊनी वस्त्र धारण किए और सदाचार - सादगी युक्त जीवन जिया।

५.३ सूफी मत एवं सम्प्रदाय

सूफी मत के उद्भव के विषय में सूफी शब्द की भाँति ही अनेक विभिन्न विचार विद्वानों ने व्यक्त किये है। सूफी मत प्रमुखतः प्रेम की भावना को उद्बोधित करता है। सूफी कवियों ने सदियों से चली आ रही रूढ़ियों और परम्पराओं का डटकर विरोध किया और स्वछंद विचारों को अनुग्रह कर अनेक कट्टरपंथियों के दुश्मन बने यही कारण है कि सूफीयों के सिद्धांत किसी विशिष्ट सम्प्रदाय या पूर्वाग्रह के लिए न होकर मानवता वादी दृष्टिकोण के लिए समर्पित था। जो उदारता, सहानुभूति और समाज में एकता प्रतिस्थापित करने में कारगर सिद्ध हुआ।

भारत में सूफी मत के आगमन का संबंध इस्लाम धर्म के साथ जोड़ा जाता है। क्योंकि सूफी सम्प्रदाय जब उदयोन्मुख था तब अधिकांश सूफी कवि इस्लामिक थे। लेकिन विद्वानों के मतानुसार भारत में पहले इस्लाम धर्म आया और बाद में सूफी मत का आविर्भाव हुआ। सूफी मत के उद्भव के विषय में कुछ विद्वानों के मतानुसार सूफीमत का आविर्भाव मानीमत, नव अफलातूनी मत, जरतुस्मत, बुद्धमत एवं भारतीय वेदांत का परिणाम है यद्यपि अनेक मुस्लिम लेखको ने इसका विरोध किया है फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि सूफीमत के प्रमुख प्रचारको ने इन सभी मान्यताओं का समावेश कर लिया था, फलतः इसका स्वरूप कुछ न कुछ समन्वयात्मक हो गया था। उनकी समन्वयात्मकता ने जितना प्रभाव भारत पर डाला उतना मुस्लिम शासकों की बलपूर्वक धर्मान्तरित करने की नीति भी नहीं डाल सकी।

निकन्सन ने सूफीमत के अन्तर्गत विभिन्न मतों का उल्लेख किया है:

१. सूफी पर वे क्रियाएँ निष्पन्न होती है जिन्हें केवल ईश्वर जानता है, सूफी सदैव ईश्वर के साथ रहता है।

२. सूफीमत पूर्णतः अनुशासित मत है।

३. सूफी किसी पर नियंत्रण नही रखता। वह स्वयं भी किसी से नियंत्रित नहीं होता।

४. सूफी मत एक ऐसी प्रणाली नहीं है, जो विधि - विधानों अथवा ज्ञान विज्ञान पर निर्भर हो। वह केवल नैतिकता को आधार मानता है।

५. **सूफीमत का अर्थ है:** उदारता और स्वतंत्रता। इस मत में स्व का दमन नहीं होता।

६. **सूफियो का कहना है:** ईश्वर तुम्हारा अहम नष्ट करता है और तुम्हें अपने में बसाता है।

७. सूफी जिस वक्त बोलता है तो उसका कथन वास्तविकता को प्रकट करता है अर्थात वह कोई ऐसी बात नहीं करता जो स्वयं उसमें न हो और जब वह मौन होता है तो जो कहता है सब सत्य कहता है और जब चुप होता है तो वह चिन्तन में डूबा रहता हैं।

८. तसब्बुफ की हकीकत तो बन्दे के अहं का नाश चाहती है अर्थात तसब्बुफ समस्त भोग-विलासों को समाप्त करने का नाम हैं।

९. सूफीमत मनुष्य और ईश्वर के मध्य किसी को सहन नहीं करता।

इस प्रकार सभी मुद्दो को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि सूफीमत का आविर्भाव किसी एक भाव - विचार की उपज नहीं है। उस पर विभिन्न दर्शनों और विचारधाराओं का प्रभाव परिलक्षित होता है। सूफीयों का मूल स्तंभ इस्लाम, इस्लाम की कट्टरता और शामी परम्पराओं बौद्ध धर्म एवं भारतीय वेदान्त का प्रभाव, नव अफलातुनी मत का प्रभाव, नास्तिक मत का प्रभाव, मानीमत व अद्वैतवाद का प्रभाव रहा हैं।

सूफीयों का उद्देश्य केवल इन्द्रियों को वश में कर जीवन को सुचारू बनाना नहीं था बल्कि परमेश्वर की निकटता पाना भी था। सूफी ईश्वर भक्ति में स्वयं इतना लीन हो जाता है कि स्वयं में और चारों तरफ केवल ईश्वर का अनुभव करता है। सूफी मत की उन्नति और प्रचार के संदर्भ में यज्ञ दत्त शर्मा ने कहा है – "सूफी धर्म का प्रचार भारत में पूर्णतया शान्ति और अहिंसा के सिद्धांतो पर चलकर हुआ। यह इस्लाम का वह रूप नहीं था जो तलवार की धार पर चलकर या फिर रक्त की सरिता में बहकर भारत भूमि में आया है। प्रेम, आत्मीयता, सरलता और सचरित्रता के सहारे यह विचारधारा भारत में फैली और इससे इस्लाम के प्रसार में जोर मिला। यह स्थायी योग था जिसने जनता के दिलों में घर किया किसी के भय या आतंक के कारण इसका प्रसार नहीं हुआ।"

भारत में सूफी मत के निम्नलिखित चार सम्प्रदाय अधिक प्रचलित है:

१. चिश्ती सम्प्रदाय

२. कादिरी सम्प्रदाय

३. सुहरावर्दी सम्प्रदाय

४. नक्शबंदी सम्प्रदाय

सूफी कवि – मुल्ला दाउद, असाइत, दामोदर कवि कल्लोल कवि, ईश्वरदास,कुतुबन, मलिक मुहम्मद जायसी आदि।

५.४ सूफी काव्यधारा की विशेषताएँ

भारतीय समाज धार्मिक कर्मकांडो में जकड़ा हुआ था । वहीं हिन्दु और मुस्लिम धर्म के अलग नियम समाज को दो राहे पर ला रहे थे., सामाजिक सामन्जस्य टूटने की कगार पर था । उस समय निर्गुण भावना ने अंतः साधना पर बल दिया हिन्दु और मुस्लिम बंधु में बेर भावना को कम कर समाज में सामन्जस्य और शुद्ध प्रेम की परिकल्पना को प्रधानता दी ।

सूफी काव्यधारा की विशेषताएँ इस प्रकार है:

१. प्रेमाख्यानक काव्य:

इस काव्यधारा को प्रेमाश्रयी काव्यधारा भी कहा जाता है । क्योंकि इस काव्यधारा का मूल प्रेम है जिसे श्रृंगार भी कहा जाता है । अधिकांश सभी सूफी कवियों ने लोक प्रेमकथाओं को अपने काव्य में प्रमुख माना । प्रेम के माध्यम से ही ईश्वर से मिलन का मार्ग मिलता है, वही सूफी कवियो ने भारतीय और विदेशी प्रेम पद्धतियों का वर्णन भी किया है और दोनो पद्धतियों को मिलाकर प्रेम का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है । विदेशी प्रेम पद्धति के अंतर्गत फारसी प्रेम में नायक की प्रेम गति अधिक तीव्र हैं वहीं भारतीय प्रेम पद्धति में नायिक अधिक प्रेम विव्हल दिखाई देती है। सूफी कवियों ने लौकिक और अलौकिक दोनों प्रेम साधनाओं का वर्णन किया है वही प्रेम की संयोग और वियोग दो अवस्थाओं में वियोगावस्था का वर्णन अधिक दृष्टिगत होता है ।

२. लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम व्यंजना:

सूफी काव्य धारा में प्रेम कथाओ का वर्णन है और इन्हीं प्रेम कथाओं में अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना हुई हैं । जैसे जायसी कृत पद्मावत में रानी पद्मावती को परमात्मा का प्रतीक माना गया है और रत्न सेन को पद्मावती के प्रति प्रेम लालसा आत्मा से परमात्मा के मिलन की अभिलाषा माना गया है । पद्मावत में एक नहीं कई ऐसे प्रसंग है जो हमें यह सोचने पर बाध्य करते हैं कि पद्मावती परमात्मा का प्रतीक है इसके लिए अन्योक्ति और समासोक्ति का प्रयोग किया गया है अलौकिक तत्व की ओर गहरा संकेत इन पंक्तियों में देखा जा सकता है ।

“जब लागि अहै, पिता कर राजू । खेलि लेहु जौ खेलहु आजु

पुनि सासुर हम गौनब कालि । कित हम कित यह सरवर पालि ॥”

३. सूफी काव्य में रहस्यवाद:

वैसे तो भारत देश में भक्ति का स्वरूप रहस्यमयी नहीं था । लेकिन सूफी काव्यधारा में रहस्यात्मक प्रवृत्ति का विस्तार से वर्णन हुआ और यह वर्णन रहस्य के दोनो भेद साधनात्मक और भावनात्मक रीति से हुआ है । इस विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं -

“योगमार्ग साधनात्मक रहस्यवाद है । यह अनेक अप्राकृतिक और जटिल अभ्यासों द्वारा मन को अव्यक्त तथ्यों का साक्षात्कार कराने की आशा देता है । तंत्र और रसायन साधनात्मक रहस्यवाद की ही श्रेणियाँ है, जैसे भूत-प्रेत की सत्ता मानकर चलने वाली भावना स्थूल

रहस्यवाद के अंतर्गत होगी। अद्वैतवाद ब्रह्मवाद को लेकर चलने वाली भावना से सूक्ष्म और उच्च कोटि के रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है।"

सूफी काव्यधारा में रहस्यात्मक माधुर्य, व्यापक स्तर पर दिखाई देता है। खासकर सूफी प्रेमाख्यानक काव्य में इन रूढियों को विस्तार से देखा जा सकता है। सूफीयों के रहस्यवाद विरह की व्यंजना से बँधा रहा इस भावना का निर्गुण संतो के साथ-साथ हठयोगियों, रसायनियों, तांत्रिकों पर भी प्रभाव दिखाई देता है।

४. मसनवी शैली का प्रयोग:

सूफी काव्यधारा के अधिकांश कवि मुसलमान थे लेकिन कट्टरपंथी नहीं थे। सूफी मत का इतना प्रचार - प्रसार होने का कारण उन्होंने हिन्दुओं में प्रचलित प्रेमकथा को अपने काव्य का विषय बनाया। जैसे जायसी द्वारा रचित पद्मावत की कथा राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती की कहानी एक ऐतिहासिक प्रेमकथा है इसे जायसी ने मसनवी शैली में इस प्रकार प्रस्तुत किया है। सबसे पहले ईश्वर वंदन उसके पश्चात अपने ईष्ट हजरत मुहम्मद को नमन। तत्पश्चात मुहम्मद साहब के मित्रों की प्रशंसा और इसके बाद गुरु की महिमा का गान कर अपने अनुदित विषय का वर्णन करना। इस प्रकार से अपनी खास मसनवी शैली का प्रयोग सूफी कवियों ने अपने काव्य में किया है जो अन्यत्र देखने को नही मिलता।

५. कथानक रूढ़ियाँ:

सूफी प्रेमाख्यान की रचना का स्वरूप प्रबंध काव्य रहा है। इनमें जो कथा वर्णन है वह मसनवी शैली में होते हुए भी भारतीय कथाओं से प्रेरित है। अधिकांश सूफी कवियों ने लोक जीवन में प्रचलित कथाओं को अपने काव्य का मूल विषय बनाया और इसके द्वारा समाज में सहिष्णुता और मानवीय प्रेम की भावना को प्रफुल्लित करना चाहा। इनके कथानक राजा-महाराजा की प्रेम कहानियों से जुड़े अवश्य थे लेकिन फारसी शैली में ढ़ले हुए थे। भारतीय कथानक और उसे विदेशी (फारसी) शैली में अभिप्रेत करने की कला साहित्य में केवल सूफी कवियों के पास ही थी।

कथाकाव्य के लक्षणों के अनुसार कथा के आरंभ में गुरु की वंदन और रचयिता का परिचय होता है उसके उपरांत कथा का प्रयोजन स्पष्ट किया जाता हैं तत्पश्चात रचना का प्रतिपाद्य और सुखकर अंत का उल्लेख होता है। काव्य कथा में धार्मिक नैतिक तत्त्वों के समावेश के साथ उस देश की संस्कृति लोक शैली को अंगीकार कर सम्पूर्ण कथा उसी वातावरण में रंग जाती है।

इन सभी आधारस्तंभों पर सूफी काव्य मूल चेतना के आधार से कथानक को गति देने के लिए कथानक रूढ़ियों की परम्परा से भारतीय कथा में व्यक्त होती रही।

६. चरित्र चित्रण:

सूफी काव्य पात्र और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से देखा जाए तो अत्यंत महत्वपूर्ण काव्य है क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से प्रसिद्ध पात्र सूफी काव्य की शोभा बढ़ाते है। सूफी प्रेमाख्यान में पात्रों की परिस्थितिनुसार उन्हें तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया गया है इस प्रकार है:

मानवीय पात्र तथा अमानवीय पात्र, मुख्य पात्र, गौण पात्र व अनावश्यक पात्र, ऐतिहासिक पात्र व काल्पनिक पात्र।

मानवीय पात्रों में काव्य में प्रस्तुत नायक-नायिका का वर्णन और उसके साथ उनके तत्कालीन परिवेश का चित्रण भी दृष्टिगत होता है। इसके अतिरिक्त अमानवीय पात्रों में कोई भी जानवर, पक्षी, राक्षस आदि आते हैं। जो मानवीय पात्र की परिस्थिति काव्य में और अधिक मजबूत बनाने का कार्य करते है, जैसे पद्मावत में हीरामन तोते का प्रमुखता से वर्णन है।

सूफी काव्य प्रेमाख्यानक काव्य है इसमें, गौण पात्र की भूमिका नायिका के पिता उसके संरक्षक निभाते हैं। ये अधिकांश नायक या नायिका के विरोधी दर्शाये गये है जैसे पद्मावत में पद्मावती के पिता द्वारा रत्नसेन को मारने का फरमान जाहिर करना आदि।

ऐतिहासिक पात्र व काल्पनिक पात्रों में कथा विधान के अंतर्गत देवी - देवता, परी आदि वर्णन प्रमुखतः आते है, जैसे रत्नसेन का पद्मावती को शिवमंदिर में देखते ही मूर्छित हो जाने पर पार्वती अप्सरा का रूप धारण कर आती है।

इस प्रकार सूफी काव्य में चरित्र कथा की माँग को पूरा करते हैं। जो ऐतिहासिक तौर पर कहीं उल्लेखित नहीं है, ऐसे काल्पनिक पात्रों के द्वारा भी कथा और काव्य को रोचकता के साथ रोमांचकारी भी बनाया गया है।

७. लोक अवधारणा व लोक संस्कृति:

सूफी कवियों की रचना में प्रेम को प्रधानता दी गई है। अधिकांश कवि मुस्लिम धर्म के अनुयायी थे परंतु तत्कालीन परिस्थिति और लोक धर्म से परिचित थे। उनके काव्य में उस समय जन मानस में प्रचलित अंध विश्वास, जादू-टोना, तंत्र-मंत्र आदि उल्लेख के साथ हिन्दु धर्म में प्रचलित मान्यता, तीर्थ, व्रत, उत्सव, पर्व आदि का विवरण है। सूफी कवि हिन्दु धर्म व संस्कृति की सम्पूर्ण जानकारी रखते थे। इसी जानकारी के फल स्वरूप इन्होंने पौराणिक ज्ञान, ज्योतिष, आयुर्वेद, बारह मासा आदि वर्णन से काव्य की सौंदर्यता के साथ-साथ कथा को तत्नुरूप प्रदान किया।

८. खंडन-मंडन का अभाव:

सूफी कवि किसी विशेष सम्प्रदाय में जकड़े नहीं उन्होंने सूफी मत का प्रचार–प्रसार किया। इस कार्य के लिए उन्होंने प्रेमकथाओं का आश्रय लिया और किसी धर्म संप्रदाय के विरोध में कोई बात नहीं की इसके विपरीत काव्य में हिन्दु लोकाचार को प्रस्तुत कर ये कवि हिन्दुओं में भी लोकप्रिय हुए। सूफी कवियों ने धर्म - संप्रदाय मजहब और रीति से ऊपर उठकर प्रेम तत्त्व की प्रधानता को अपनाया और काव्यरूप में परिणत किया।

९. विरहात्मक वर्णन की अधिकता:

यह तो हम जानते ही है कि सूफीकाव्य प्रेमाख्यानक काव्य है और काव्य रूप की दृष्टि से प्रेम को श्रृंगार कहा गया है और श्रृंगार के दो भेद बताये गये है। पहला संयोग और दूसरा वियोग। सूफी काव्य संयोग की अपेक्षा वियोग वर्णन की अधिकता व्यक्त करता है। उन्होंने

नायक-नायिका को परमात्मा और (आत्मा) (साधक) के रूप में प्रस्तुत किया है इसीलिए सूफी कवियों की साधना में आत्मा परमात्मा के दर्शन हेतु या आत्मा परमात्मा से बिछड़कर उसके वियोग में तड़प रही है। संसार का हर एक प्राणी उसकी खोज में है उसे पाना चाहता है। संसार की हर एक वस्तु वह चंद्र हो या सूर्य, जल हो या अग्नि उसके मिलन हेतु आतुर है विरहाग्नि में जल रही हैं।

१०. काव्यशैली:

सूफी काव्य में विषयानुरूप और समयानुरूप शैलियों का प्रयोग किया गया हैं। मुख्यतः प्रकृति वर्णन, नारी सौंदर्य, विरह वेदना आदि प्रसंगो में अभिधापरक शैली का प्रयोग हुआ है। वही लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना कर ऐतिहासिक और काल्पनिक पात्रों की प्रतीकात्मक भूमिका को प्रस्तुत कर प्रतीकात्मक शैली की बहुलता सूफी काव्य में दिखती है। वहीं सूफी जन - मानस के कवि थे उनके काव्य में लौकिकता, पारलौकिकता अभिव्यक्त हुई है इसीलिए काव्य में अन्योक्ति, समासोक्ति के माध्यम से यह वर्णन हुआ है।

११. काव्यगत सौंदर्य:

काव्यगत सौंदर्य की दृष्टि से सूफीकाव्य बहुआयामी सिद्ध हुआ है। काव्यगत दृष्टि से हम सूफी कवियों के काव्य की भाषा अलंकार और छंद विधान का अध्ययन करेंगे।

भाषा:

अधिकांश सूफी कवि पूर्वी देश के निवासी होने के कारण सूफी काव्य में अवधी भाषा प्रयुक्त हुई है। सूफी कवियों की भाषा के विषय में पं. परशुराम चतुर्वेदीजी ने लिखा है: "सूफी प्रेम - गाथा के कवियो का भाषा पर परिपूर्ण अधिकार सर्वत्र नहीं लक्षित होता। जायसी, जान कवि, उसमान और नूर महम्मद इस विषय में अधिक सफल जान पड़ते हैं। जायसी द्वारा किया गया शुद्ध और मुहावरेदार अवधी का प्रयोग तथा नूर मुहम्मद का संस्कृत शब्द भंडार पर अधिकार विशेष रूप से उल्लेखनीय है।"

अलंकार:

सूफी काव्य में अतिशयोक्ति, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति, अन्योक्ति आदि अलंकारों का सुंदर प्रयोग हुआ है वही अवधि भाषा के कुछ मुहावरे और लोकोक्तियाँ भी सूफी काव्य में देखी जा सकती है।

छंद:

छंद प्रयोग की दृष्टि से विदेशी शैली को न अपनाकर भारतीय काव्यशास्त्रीय छंद को ही अपनाया है। चौपाई छंद का प्रयोग प्रमुखता से किया है। दोहा छंद का भी प्रयोग बहुलता से हुआ है। विद्वानो ने दोहा और चौपाई छंदो का उगम पूर्वी प्रदेशों से ही माना है। इसके अतिरिक्त जिस छंद का वर्णन हुआ है वह है अर्द्धालियों का प्रयोग जायसी और अन्य अवधी भाषी कवियों ने किया है अन्य सूफी कवियों ने सोरठा, बरवै, कवित्त, सवैया, कुण्डलिया तथा झूलना छंद का प्रयोग काव्य में प्रमुखता से किया है।

५.५ सारांश

इस इकाई में हमने सूफी काव्य का विस्तार से अध्ययन किया, सूफी शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ, स्वरूप, सम्प्रदाय, प्रमुख कवि उनकी रचनाओं को जानने के साथ साथ सूफी काव्य की प्रवृत्तियों का अध्ययन किया है कि किस प्रकार सूफी कवियों ने प्रेमाख्यानक काव्य रचना कर हिन्दु मुस्लिमों के बीच की दूरी को कम करने का प्रयास किया। राज्याश्रित और धर्माश्रित रचनाओं को त्याज्य कर लोकाथित काव्य रचनाओं को महत्व दिया | सिद्धांतवाद, मत वाद, सम्प्रदाय वाद को छोड़ मानव मन की पीर के कवि बने।

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी सूफी संप्रदाय को जान सके और सूफी कवियों की उदार प्रवृत्ति जिसके द्वारा मानव मन में प्रेम का निर्माण हुआ। जाति, धर्म के भेद को भुलाकर प्रेम तत्व की महानता का पाठ समाज को पढ़ाया। सूफी कवियों की सरसता तत्कालीन समय की विषम परिस्थितियों में भी जन-जन को आकर्षित करने में सफल हुई।

५.६ दीर्घोत्तरीय प्रश्न

१) सूफी शब्द के विभिन्न अर्थो पर विचार करते हुए सूफी शब्द के मूल अर्थ स्पष्ट कीजिए।

२) सूफी शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।

५.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१) सूफी शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है?

२) सूफी मत में प्रमुखत: कितने सम्प्रदायों का वर्णन है?

३) सुहरा वर्दी सम्प्रदाय के प्रवर्तक कौन है?

४) 'इसहाक शामी' ने किस संप्रदाय की स्थापना की?

५) सूफी कवियों को प्रमुखत: कितने भागों में विभाजित किया गया है?

६) सूफी काव्य का दूसरा नाम क्या है?

५.८ संदर्भ पुस्तकें

१) सूफी काव्य संग्रह - संपादक - परशुराम चतुर्वेदी

२) हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान - परशुराम चतुर्वेदी

३) सूफीवाद कुछ महत्वपूर्ण लेख - एन.आर. फारूकी

*****

६

रामभक्ति काव्य की विशेषताएँ

इकाई की रूपरेखा

६.० इकाई का उद्देश्य

६.१ प्रस्तावना

६.२ राम भक्ति काव्य की विशेषताएँ

- ६.२.१ आराध्य श्री राम का स्वरुप
- ६.२.२ समन्वयात्मकता
- ६.२.३ लोकमंगल की भावना
- ६.२.४ भक्ति का स्वरुप
- ६.२.५ प्रकृति चित्रण
- ६.२.६ नैतिक मूल्यों का आदर्श
- ६.२.७ नारी के प्रति भाव
- ६.२.८ गुरू की महिमा का मान
- ६.२.९ प्रबंध काव्य की रचना व अन्य शैली
- ६.२.१० भाषा
- ६.२.११ रस योजना
- ६.२.१२ छंद एवं अलंकार

६.३ सारांश

६.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

६.५ लघुत्तरीय प्रश्न

६.६ संदर्भ पुस्तकें

६.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी राम भक्ति काव्य धारा और राम भक्ति काव्य की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन कर सकेंगे।

६.१ प्रस्तावना

भक्ति काल में 'राम' दो अक्षरों का अर्थमान शब्द संत कवि, निर्गुण, कवि सगुण कवि, प्रेमाश्रयी कवि और ज्ञानाश्रयी कवि सभी के द्वारा ब्रह्मरूप, ईश रूप, आराध्य रूप, मूर्तिमान रूप, आदर्श रूप आदि कई उपमानों के साथ प्रयुक्त हुआ है। राम के जीवन से संबंधित प्रथम काव्य 'वाल्मिकी रामायण' है वाल्मिकी रामायण में राम का मर्यादा पुरूषोत्तम रूप

समाज के लिए आदर्श बन गया बाद में राम चरित मानस अवधी भाषा में तुलसीदासजी द्वारा लिखी गई । इस ग्रंथ ने घर-घर के मंदिर में अपना स्थान बनाया।

६.२ राम भक्ति काव्य की विशेषताएँ

राम भक्ति काव्य धारा के प्रमुख प्रवर्तक रामानुजाचार्य माने जाते है। रामानुजाचार्य ने वैष्णव सम्प्रदाय की स्थापना की । इस संप्रदाय में प्रमुखतः विष्णु की उपासना की जाती है । राजानुजाचार्यजी ने भक्ति के सगुण और निर्गुण दोनो रूप की उपासना की है। रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में श्री रामानंद को महत्वपूर्ण स्थान है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने स्वामी रामानंद को हिन्दी की राम काव्यधारा का प्रमुख और प्रथम कवि माना है। परंतु रामकाव्य धारा के सर्वप्रमुख कवियों में तुलसी दास का वास जन जन के हृदय में है। तुलसी दासजी ने दास्य भाव की भक्ति प्रतिष्ठा कर राम भक्ति काव्य धारा को एक निश्चित दिशा मिली। वहीं राम की उपासना से समाज में आदर्श प्रस्तुत किया। क्योंकि राम भक्त कवियों ने राम का लोकरक्षक और लोक रंजक रूप प्रस्तुत किया है। राम की उपासना विष्णु अवतार के रूप में की है। राम भक्त कवियों द्वारा की गई उपासना समाज को आदर्शोन्मुखी करने वाली थी और भक्ति विभोर भी। तुलसी दासजी ने राम को पूर्व ब्रह्मअवतार रूप में प्रतिष्ठित किया। तुलसीदासजी के काव्य की विशेषताएँ ही राम भक्ति काव्यधारा की विशेषताएँ मानी जाती है । राम भक्ति काव्य धारा में अनेक कवि हुए उनमें प्रमुख कवि है: स्वामी रामानंद, स्वामी अग्रदास, नाभादास, ईश्वरदास, केशवदास, प्राणचंद चौहान, सेनापति, कपूरचंद्र आदि.

राम भक्ति काव्य की विशेषताएँ:

६.२.१ आराध्य श्री राम का स्वरुप:

राम भक्त कवियों ने आराध्य श्री राम को विष्णु अवतार माना। उनका मानना है कि राम अवतार रूप में धरती पर जन्में राक्षसों का नाश करने के लिए, समाज की बुराइयों को मिटाने हेतु और एक आदर्श, शील व्यक्तित्व की सीख देने हेतु वे अपने पुण्यवान भक्तों के संकट को हरने के लिए आये है, पापीयों का नाश की शाश्वती राम अवतार है, वे मर्यादा पुरूषोत्तम और आदर्श मानव की कल्पना का साकार रूप है। राम भक्त कवि राम की बाल-लीला से लेकर उनके जीवन के प्रत्येक प्रसंग को बहुत खुबी के साथ बखानते है और उनके सुंदर सुशील काव्य को पढ़कर-सुनकर जन जन राम भक्ति में लीन हो जाता है।

‘राम भगति मनि उर बस जाकें।

दुख लवलेस न सपने हुँ ताकें॥

चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं।

जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥’

राम भक्ति कवियों के समय की राजनीतिक और सामाजिक दशा तर्क संगत नहीं थी ऐसे समय में तुलसीदासजी द्वारा राम महिमा का वर्णन समाज को सही दिशा की ओर ले जाने वाला एक अथक प्रयास था। जो सफल भी रहा इस संबंध में डॉ. राम कुमार वर्मा ने कहा है:

'राजनीति की जटिल परिस्थितियों में धर्म की भावना किस प्रकार अपना उत्थान कर सकती है, यह राम काव्य ने स्पष्ट कर दिया।

६.२.२ समन्वयात्मकता:

राम, शिव, शक्ति और सौंदर्य का समन्वयित रूप माने जाते है। माना जाता है सौंदर्य में वे त्रिभुवन के लजावन हारे है, शक्ति में राक्षसों का नाश करने वाले और गुणों में वे संसार को कई सदीयो तक सदाचार की शिक्षा के स्त्रोत है। जिस प्रकार श्री राम में सभी गुणों का समन्वय है उसी प्रकार उनका काव्य भी समन्वय से दृष्टिगत होता है। इस संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते है – 'तुलसी का काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।'

ऐसा नहीं है कि राम काव्य केवल राम की उपासना से ही प्रेषित है बल्कि श्री गणेश, शिव, पार्वती, गौरी, गंगा. कृष्ण आदि देवताओं का स्तुति गान भी राम काव्य की शोभा बढ़ाता है।

उसी प्रकार राम काव्य में सगुणवाद और निर्गुणवाद में एकरूपता लक्षित होती है वहीं राम भक्ति काव्य ज्ञान, कर्म, भक्ति के साथ प्रवृत्ति और निर्वृत्ति के बीच समन्वय स्थापित करता है। राम भक्त कवियों ने द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद तथा शुद्धाद्वैतवाद आदि सभी सिद्धातों में समन्वय प्रस्तुत करता है। रामचरित मानस के एक प्रसंग में सेतुबन्ध के अवसर पर राम ने शिव आराधना की है –

"शिवद्रोही मम दास कहावा।

सोर नर मोहि सपनेहु नहीं भावा॥"

६.२.३ लोकमंगल की भावना:

तुलसी दासजी का समय हिन्दुओं की दशा का चिंतनीय और दयनीय अवस्था का काल था। ऐसे समय में गोस्वामीजी का 'राम चरित मानस' जैसे ग्रंथ की रचना कर उसमें राम का चरित्र लोक नायक के रूप में प्रतिष्ठित करना उनके लोकरंजक और लोकरक्षक रूप को दिखावा समाज के लिए बहुत बड़ी प्रेरणा थी। राम एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श शिष्य और आदर्श राजा के रूप चित्रित हुए तुलसीदासजी ने उनके जीवन का यह उच्च अंकन दर्शाकर समाज के हर तब्खे के जन-मानस को उच्च लोक प्रेरणा से अवगत कराया। यही कारण है आदर्श राज्य को राम राज्य कहा जाता है। राम चरित्र मानस में जिस प्रकार राम को आदर्श पुरूष के रूप मे दिखाया है उसी प्रकार सीता आदर्श पत्नी-पुत्री, कौशल्या आदर्श माता, लक्ष्मण और भरत आदर्श भ्राता, सुग्रीव आदर्श मित्र और हनुमान आदर्श सेवक के रूप में चरितार्थ हुए है।

'कीरति भनिति भूति भत्ति सोई।

सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥'

६.२.४ भक्ति का स्वरुप:

राम काव्य धारा भक्ति आंदोलन की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। इन कवियों ने रचित काव्य द्वारा भावात्मक और सांस्कृतिक एकता के क्षेत्र मे जन-जन के लिए जीवन सुलभ बनाने का

कार्य किया। इन्होने ज्ञान और योग से भक्ति को श्रेष्ठ माना। तुलसीदास भक्ति के मर्यादा रूप को स्वीकार करते हुए दास्य भक्ति को अपनाकर श्री राम के चरणों में स्वयं को अर्पित कर देते है। इसी प्रकार सभी राम भक्त कवियों ने वैधी या मर्यादा भक्ति को चरम मान भक्त हृदय की आराधना को एकाग्रचित्र से राम रूप पर अर्पण कर दिया। तुलसीदासजी निर्गुण और सगुण दोनो मान्यताओं को मानने वाले है वे शैव, शक्ति और पुष्टि मार्ग का विरोध नहीं करते वरन् उदार दृष्टिकोण से उन्हे परखते है। तुलसी दासजी का भक्तिवादी दृष्टिकोण आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस प्रकार व्यक्त करते है: "गोस्वामीजी की भक्ति पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सर्वांगपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती सब पक्षों के साथ उनका सामन्जस्य है।"

राम भक्त कवियों की रचनाओं में नवधा भक्ति के उदाहरण मिलते है लेकिन दास्य भक्ति का स्वरूप शीर्ष स्थान पर है। वे दास्य भाव से आराध्य राम की आराधना करने में सुजलाम, सुफलाम की प्रतीति मानते है।

'सेवक सेव्य भाव बिनु, भाव न तरिय उरगारि।'

इसी प्रकार राम भक्ति कवियों के लिए राम सर्वश्रेष्ठ है –

'राम से बड़ो है कौन मोसो कौन छोटो।

राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो॥'

तुलसीदास आराध्य के सगुण और निर्गुण रूप दोनो के उपासक है:

'सगुण अगुण दुई ब्रह्म सरूपा

अकथ आनादि अगाधिखरो अरूपा।'

पात्र तथा चरित्र चित्रण:

राम काव्य धारा के कवियों ने अपने काव्य में सभी पात्रों को आदर्श और लोक मर्यादा का पालन करते हुए बताया गया है महान चरित्र और सदाचार का अनुकरण हुआ है। मानव प्रवृत्ति में व्याप्त सत, रज, तम तीनों गुणों को दर्शाया गया है। सत गुण को सर्वोपरि माना है तम रूपी दुर्गुण अर्थात रावण की पराजय और सत रूपी सदाचारी राम की जय इस बात का प्रमाण है। महाकवि तुलसीदास ने 'राम चरित्र मानस' के माध्यम से राम के सम्पूर्ण जीवन को चरितार्थ किया है। राम उनके तीनो भाई भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, पिता दशरथ, माता कौशल्या, भार्या सीता और अन्य सभी पात्र सद्गुणी, विभीषण केवल राम के मार्गदर्शन से चलकर उनकी भक्ति के द्योतक है। रावण, कुंभकरण, मेघनाथ अन्य कई राक्षस गणी, दृष्ट दुराचारी बताये है और दुराचारी दुष्टों का अंत अटल है यह भी सीख राम चरित मानस से समाज को मिलती है।

निर्गुण रूप में राम ब्रह्मरूप है लेकिन सदगुणी सदाचारी है।

"मन मुसुकाइ भानुकुलभानू। राम सहज आनंद निधान॥

सुनु जननी, सोई सुत बड़भागी, जो पितु-सातु बचन अनुरागी ॥

तनय मातु-पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननी, सकल संसारा ॥"

६.२.५ प्रकृति चित्रण:

प्रकृति चित्रण राम काव्य धारा में स्वभाविकतः आराध्य श्री राम के माध्यम से हुआ है। रामचरित मानस में किष्किंधा कांड और अरण्यकांड में प्रकृत्ति का विशेष वर्णन हम देख सकते है। श्री राम महलों में जन्मे राज पुत्र थे परंतु उस समय के संस्कार के तहत शिक्षा अर्जन के लिए गुरूकुल परम्परा का चलन था और गुरू पर्णकुटि बनाकर वनों में रहते, वहीं क्षत्रीय व अन्य बालक प्रकृत्ति और गुरू के सानिध्य में शिक्षा ग्रहण करते थे। इसके अतिरिक्त राम को १४ वर्ष वनवास गमन का वर्णन है इसिलिए अनेक स्थल प्रकृत्ति चित्रण से सजे हुए है। वानरों से श्री राम की मित्रता वनराज सुग्रीव से मैत्री, हनुमान सा सेवक, गिद्धराज और जटायु जैसे मार्गदर्शक श्रद्धालु, निषादराज और केवट वन में रहने वाले ज्ञाता और इन सभी की सहायता से राम की रावण पर विजय पाना राम कथा का महत्वपूर्ण भाग है। राम स्वयं ब्रह्मस्वरूप विष्णु अवतार थे लेकिन उन्होंने अपनी विजय का श्रेय अपने सभी सहयोगियों को दिया। राम ने अपने जीवन का बहुतसा समय वन में निर्वाह किया। इसीलिए राम कथा में वन्य जीव, सभी ऋतुएँ, वृक्ष, लताएँ, सरोवर, पुष्प, हरित तृण और प्रकृत्ति के अन्य सभी उपादानों को प्रस्तुत किया है।

"बांधे घाट मनोहर चारी, संत हृदय जस निर्मल बारी ॥

जहँ जहँ पियन्हि विविध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥"

सीता हरण के पश्चात राम वन के चहचरों से सीता का पता पूछते है:

'हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी, तुमने देखी सीता मृगनयनी।'

६.२.६ नैतिक मूल्यों का आदर्श:

राम भक्त कवियों की भक्ति केवल श्रद्धा अंश न होकर समाज के लिए हितोपदेश का सार भी है। राम भक्त कवि उपदेशक भी थे। क्योंकि रामभक्त कवियों ने राम के चरित्र के माध्यम से एक आदर्श जीवन शैली प्रस्तुत की जो त्याग धर्म, सदाचार, आचार, आदर, प्रेम, सहिष्णुता, मर्यादा, वचन पालन, न्याय आदि अनेक नैतिक तत्वों का पाठ पढ़ाया और यह नैतिकता की पराकाष्ठा केवल मर्यादा पुरूषोत्तम राम के काव्य में ही संभव है।

"रघुकुल रीत सदा चली आई,

प्राण जाय पर वचन न जाई ॥"

६.२.७ नारी के प्रति भाव:

राम काव्य में जब नारी के प्रति दृष्टिकोण का जिक्र होता है तब तुलसी दास के रचित एक दोहे के माध्यम से नारी को निंदनीय करार दे दिया जाता है वह दोहा इस प्रकार है –

'ढोल गँवार सुद्र पसू नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी।'

लेकिन पाठक इस बात का स्मरण मात्र भी नहीं करना चाहते है कि तुलसी दासजी ने सीता, अनुसूया, पार्वती, कौशल्या आदि नारीयों को पतिव्रता, सती, त्यागमयी, ममता मयी रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने कुल्टा, कुलक्षिणि नारी की अवहेलना की है न कि सम्पूर्ण नारी जाति की वे पतिव्रता नारी की प्रशंसा करते हुए कहते है कि –

"बन्य नारि पतिव्रत अनुसरी।"

तुलसीदासजी नारी जाति के प्रति संवेदना का भाव रखते है वे नारी जाति की पराधीनता को लक्ष करते हुए कहते है –

"कत विधी सृजी नारि जग माही।

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।"

६.२.८ गुरू की महिमा का मान:

राम काव्य धारा के कवि निर्गुणधारा के कवियों की भाँति गुरू का स्थान सर्वोच्च मानते है। उनके लिए गुरू ब्रम्ह का प्रतिनिधी रूप है। महाकवि तुलसीदास गुरू के बिना काव्य प्राप्ति असंभव मानते है।

"बंदऊँ गुरूपद पदुम परागा। सुरूचि सुबास सरस अनुरागा॥

श्रमिश्र मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रूज परिवारू॥"

६.२.९ प्रबंध काव्य की रचना व अन्य शैली:

भक्तिकाल में राम भक्ति धारा के कवियों ने प्रबंध काव्य रचना का मानस अधिक रहा। इस श्रेणी में हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ समझा जाने वाला काव्य तुलसीदास कृत रामचरित मानस का उल्लेख अव्वल है। इसके अतिरिक्त लालचंद का अवध विलास, ह्रदय राम का हनुमन्नाटक, प्राणचंद चौहान का रामायण महानाटक आदि प्रबंध प्रमुख है।

राम काव्यधारा मे प्रबंध काव्य के साथ अन्य काव्य शैली में भी रचना हुई जैसे प्रबंध काव्य में दोहा-चौपाई शैली का प्रयोग, कविता वली में कवित्र, सर्वेया का प्रयोग कर मुक्तक काव्य की रचना करना इसी प्रकार पद का प्रयोग विनय में और बरवै शैली का प्रयोग बरवै रामायण में हुआ है।

६.२.१० भाषा:

रामानंदजी ने काव्य में संस्कृत भाषा को त्याग कर जनसमूह की भाषा का प्रयोग काव्य रचना में कर भाषायी दृष्टि से काव्य जन-जन के लिए सुलभ बना दिया। तुलसी दासजी ने अपनी मातृभाषा अवधी में काव्य रचना की साथ ही कृष्ण चरितावली में सफलता पूर्वक ब्रज भाषा का प्रयोग किया। केशव की राम चंद्रिका ब्रज भाषा में रचित है। राम भक्ति काव्य धारा के अधिकांश कवियों ने अवधी भाषा को ही रचना का माध्यम चुना। लालदास कृत अवध विलास, ईश्वरदास कृत भरत मिलाप और तुलसी व अन्य राम भक्त कवियों की अनेक रचनाएं अवधी भाषा के श्रेष्ठ उदाहरण है। अवधी और ब्रज भाषा के व्यतिरिक्त भोजपुरी

बुंदेलखंडी, राजस्थानी, संस्कृत, फारसी भाषा के शब्दों की प्रयुक्ति भी राम काव्य में परिलक्षित होती है।

६.२.११ रस योजना:

राम काव्य प्रबंध शैली के कारण सभी नौ रसों की व्यापक उपलब्धता है। राम भक्ति में ब्रम्ह स्वरूप और मर्यादा पुरूषोत्तम है इसीलिए शांत रस की प्रधानता है। रामचरित्र मानस में युद्धवर्णन में वीर रस और रौद्र रस, पुष्प वाटिका में सीता के प्रथम दर्शन के समय श्रृंगार का मर्यादित रूप इस प्रकार राम वन गमन के समय करूण रस प्रकार प्रसंगानुरूप भयानक और वीभत्स रस की निष्पत्ति हुई है। नारद मोह के प्रसंग में हास्य रस और अनेक दृश्यों में अद्भुत रस की व्याप्ति कुशलता से हुई है।

६.२.१२ छंद एवं अलंकार:

राम काव्य में छंद भेद के कई प्रकार बहुत बखुबी से प्रयोग हुए है जिनमें दोहा और चौपाई प्रमुख है। अन्य छंद में वीरगाथा का छप्पय, सन्त काव्य का दोहा के अतिरिक्त कुण्डलिया, सोरठा, सवैया, घनाक्षरी, तोमर, त्रिभंगी आदि छंद प्रयुक्त हुए है।

रामभक्त कवियों ने अलंकार का प्रयोग बड़ी ही सहजता से किया है तुलसीदासजी के काव्य मे सभी प्रकार के अलंकार का प्रयोग हुआ है परंतु उपमा और रूपक प्रमुखता से प्रयुक्त हुए है। कवी केशव ने शब्दालंकार का प्रयोग किया है जो किसी अन्य कवि के काव्य में नहीं है। वहीं अर्थालंकार का सहज स्वाभाविक प्रयोग सभी राम भक्त रचनाओं में हुआ है।

६.३ सारांश

राम भक्ति काव्य समाज व साहित्य का गौरव है। क्योंकि यह लोकाचार, सदाचार लोकरंजन की दृष्टि से अक्षुण्ण है। तुलसीदासजी जैसे महाकवी इस परम्परा के द्योतक है जो धर्म, समाज में समन्वयवादी दृष्टिकोण के सापेक्ष है। काव्य को उत्कृष्ठ बनाते है और समाज में धर्म रक्षा, लोकहित और मंगलवाणी का विस्तार करते है।

६.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) राम काव्य की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

२) राम काव्य की विशेषताओं का उदाहरण सहित विवेचन कीजिए।

६.५ लघुत्तरीय प्रश्न

१) राम भक्ति काव्य धारा में राम किसके अवतार माने गये है ?

उत्तर: विष्णु भगवान

२) राम भक्ति काव्य धारा के प्रमुख कवि है।

उत्तर: तुलसी दास

३) कवि केशव किस धारा के कवि है ?

उत्तर: रामकाव्य धारा

४) रामचरित मानस कौनसी काव्य शैली की रचना है ?

उत्तर: प्रबंध काव्य शैली

५) हिन्दु धर्म के अतिरिक्त कौनसे धर्म में राम कथा का प्रयोग हुआ है ?

उत्तर: जैन धर्म

६.६ संदर्भ पुस्तकें

१) उत्तर हिन्दी राम काव्यधारा - उमेश चंद्र मधुकर

२) भक्तिकाव्य से साक्षात्कार - कृष्णदत्त पालीवाल

*****

७

कृष्णभक्ति काव्यधारा की विशेषताएँ

इकाई की रूपरेखा

७.० इकाई का उद्देश्य

७.१ प्रस्तावना

७.२ कृष्ण भक्ति काव्य की विशेषताएँ

- ७.२.१ कृष्ण का स्वरूप
- ७.२.२ कृष्ण लीला का वर्णन
- ७.२.३ भक्ति भावना
- ७.२.४ विषय वस्तु को मौलिकता
- ७.२.५ अन्य देवो की आराधना
- ७.२.६ प्रकृति – वर्णन
- ७.२.७ रीति तत्वों का समावेश
- ७.२.८ सामाजिक लोकाचार की प्रतिबद्धता
- ७.२.९ प्रेम की अलौकिकता
- ७.२.१० पात्र एवं चरित्र-चित्रण
- ७.२.११ ऐतिहासिक पक्ष
- ७.२.१२ संगीत – स्वरादि भाव
- ७.२.१३ काव्य शैली
  - ७.२.१३.१ भाषा
  - ७.२.१३.२ रस
  - ७.२.१३.३ अलंकार
  - ७.२.१३.४ शब्द शक्ति

७.३ सारांश

७.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

७.५ लघुत्तरीय प्रश्न

७.६ संदर्भ पुस्तके

७.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी कृष्ण भक्ति काव्य की विशेषताओं का परिपूर्ण अध्ययन कर सकेगें।

७.१ प्रस्तावना

भक्तिकाल में कृष्ण भक्तिकाव्य को अत्यधिक महत्व प्राप्त है। द्वापर युग में कृष्ण जन्म बुराई और राक्षसी प्रवृत्ति का नाश कर न्याय व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने हेतु हुआ था। कृष्ण महिमा का वर्णन हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, पद्म पुराण आदि में विस्तार से हुआ है। परंतु भक्तिकाल की कृष्ण भक्तिधारा में लोक प्रचलित भाषा में रचित कृष्ण काव्य जन-जन तक पहुंचा। अनेक सम्प्रदायों ने कृष्ण भक्तिगान को साहित्य में उच्च स्थान पर पहुँचा दिया।

७.२ कृष्ण भक्ति काव्य की विशेषताएँ

भक्तिकाल की सगुण काव्य धारा में कृष्ण भक्ति काव्य सर्वाधिक सरस, मधुर और आकर्षण से परिपूर्ण है। कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय के विकास में कई सम्प्रदायों का सहयोग रहा। इनमें प्रमुख है- निम्बार्क सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय, वल्लभ सम्प्रदाय, राधा वल्लभ सम्प्रदाय, हित हरिवंश सम्प्रदाय, गोडीय सम्प्रदाय, पुष्टि सम्प्रदाय, सखी सम्प्रदाय आदि। आचार्य वल्लभचार्य के अनुसार कृष्ण परब्रम्ह है श्री कृष्ण सृष्टि के लालन कर्ता स्वयं सच्चिदानंद स्वरुप है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय के विषय में लिखा है:- 'भक्ति का साहित्य मनुष्य की सबसे प्रबल भूख का समाधान करता है। वह मनुष्य को बाह्य विषयों की आसक्ति से तो अलग कर देता है लेकिन तत्ववादी और प्रेमहीन तत्वों का उपासक नहीं बनाता। वह मनुष्य की सरसता को उदबुद्ध करता है, उसकी अर्न्तनिहित अनुराग लालसा को उधर्वमुखी करता है और उसे निरंतर रसासिक्त बनाता है।'

कृष्ण काव्य को व्यापक और संचारित करने का सम्पूर्ण ध्येय सूरदासजी को जाता है। सूरदास का मनोरम मनमोहक काव्य अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। सूरदासजी अपनी बंद आंखों से आराध्य को चित्रित कर सके हिन्दी साहित्य में कोई दूसरा कवि इतने मनोरम और माधुर्य दृश्य न दिखा सका। सूरदासजी कृष्ण भक्ति काव्य के प्रणैता माने जाते लेकिन कृष्ण भक्त कवियों की सूचि बहुत लम्बी है जिनमें अष्टछाप के कवि कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीतस्वामी गोविन्द स्वामी, चतुर्भुज दास, नंददास इस प्रकार सूरदासजी सहित अष्ठछाप के ये आठ कवि है। गोस्वामी हित हरिवंश, मीराबाई, रसखान आदि कृष्णभक्ति कवि लोकप्रिय है।

कृष्णभक्ति काव्य धारा की विशेषताएँ:

७.२.१ श्री कृष्ण का स्वरूप:

कृष्णभक्त कवियों ने कृष्ण की उपासना अवतार रूप में की है कृष्ण के माधुर्य रूप को सर्वगुण सम्पन्न, सर्व शक्तिमान, बुराई का नाश कर अच्छाई को जिताने वाला बताया है। कृष्ण की बाल लिलाएँ वास्तविक है पर उन बाल लीलाओं में जब कुछ आश्चर्य घटित होता है तो वे साक्षात देवलीला के समान दृष्टिगत होती है। मानव रूप में कृष्ण नंद यशोदा के पुत्र है, ग्वाल-बालों के सखा है, बलराम के बंधु है और गोपियों के प्रेमी है वहीं कुरुक्षेत्र की रणभूमि में श्री मद् भागवत का उच्चार, विराट रूप की प्रस्तुति करना उनके देव अवतार रूप को दिखाता है और उन्हें तीनों लोको का स्वामी घोषित करता है।

७.२.२ कृष्णलीला का वर्णन:

कृष्ण भक्त कवियों द्वारा कृष्ण के बाल रूप और रासलीला के माधुर्य वर्णन के कारण ही कृष्ण पद आकर्षित और प्रसिद्ध हुए है। कृष्ण के बाल लीला संबंधी पद अखंड आनंद की प्राप्ति देने वाले है साथ ही आध्यात्मिक परिपूर्णता को अभिव्यंजित करते है। बाल गोपाल की माधुर्य-निरामय लीलाओं से ही सम्पूर्ण कृष्णभक्ति काव्य शोभायमान हुआ है। सूरदास ने बालक कृष्ण की विभिन्न क्रीडाओं चेष्टाओं का सजीव चित्रण किया है। कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण की लोक रंजनकारी लीलाओं को अपने काव्य का प्रमुख विषय बना कर जन-जन को माधुर्य रस से विभोर कर दिया है। इस प्रकार कृष्णभक्ति काव्य में सूरदासजी द्वारा वात्सल्य रस की निष्पत्ति हुई है और श्रृंगार रस की उदभावना कृष्ण भक्त कवियों के अतिरिक्त और कही इतनी सजीव नहीं है।

वात्सल्य रस:

"मैया कब हीं बढ़ेगी चौटी?

किती बार मोहि दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी ॥

तू जो कहती बल की बनी ज्यों, है लांबी-मोटी ।"

माधुर्य रस:

"प्रान इक है देह कीन्हे, भक्ति-प्रीति-प्रकास ।

सूर-स्वाम स्वामिनी मित्ती, करत रंग-विकास ॥"

७.२.३ भक्ति भावना:

महाप्रभु वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण भक्ति का स्वरूप अत्यंत आकर्षित तैयार किया था। क्योंकि कृष्ण अवतार रूप भागवत गीता के उच्चार से कृष्ण का जीवन के प्रति गांभीर्य भाव दर्शाता है वहीं उनके बालपन की क्रीड़ा, सखों के साथ बीता समय, गोपियों के साथ छेड़खानी और रास लीला का वर्णन कृष्ण भक्ति काव्य धारा को नव भक्ति में आकृष्ट करता है वहीं माधुर्य के चारो प्रकारों का वर्णन कृष्ण भक्ति काव्य में है और प्रेम प्रधान भक्ति के दोनो प्रकार स्वकीया और परकीया भक्ति का प्रयोग कृष्ण भक्ति की अधिकता होते हुए भी दास्य और दाम्पत्य भाव की प्रधानता काव्य में मिलती है।

वात्सल्य भाव में कृष्ण की बाल चेष्टाओँ और यशोदा मां का सुंदर वर्णन कृष्ण भक्त कवियों ने किया है लेकिन इस झांकी का सर्वश्रेष्ठ चित्र सूरदास बनाने में समर्थ रहे।

"जसोदा बार बार यों भाखै

है ब्रज में हितु हमारौ, चलत गोपालहि राखै ।"

सख्य भाव में कृष्ण और ग्वाल बालो के संग गोकुल वृंदावन के प्रसंग है वहीं सुदामा और कृष्ण की मित्रता तो आज दृष्टांत रूप में जन जन के मुख पर है।

सख्य भक्ति भाव की प्रधानता होते हुए भी दास्य भक्ति भावना को यथा स्थान कृष्ण भक्ति काव्य में है:

"प्रभु! हो सब पतितन कौ टिकौ।"

७.२.४ विषय वस्तु की मौलिकता:

कृष्ण काव्य भागवत पुराण से अभिप्रेरित है। वल्लभाचार्यजी ने कृष्ण भक्ति के नियमों में निर्देश दिये थे कि भागवत के दशम स्कन्ध को आधार बना कर कृष्ण लीला काव्य रचे। इसीलिए कृष्ण भक्त कवियों ने श्री कृष्ण वर्णन का मूलाधार श्री मदभागवत गीता को माना और सभी कवियों के काव्य में श्री कृष्ण का ब्रम्हत्व और अलौकिकता का समावेश है किन्तु हिन्दी साहित्य के अंतर्गत ब्रजभाषा में प्रधानत: जो कृष्ण भक्ति काव्य रचा गया उसमें कृष्ण की बाल लीला, प्रणयलीला का वर्णन अत्यंत माधुर्यता से हुआ है। श्री मदभागवत में राधा का वर्णन ने होते हुए श्री कृष्ण से प्रेम करने वाली एक गोपी का वर्णन है परंतु सूरदास व अन्य कृष्ण भक्त कवियों ने प्रणय वर्णन में कृष्ण के साथ राधा का वर्णन कर कृष्ण काव्य को भव्य बना दिया है। भागवत में कृष्ण गोपियों के अति आग्रह से रास लीला में शामिल होते है परंतु कृष्ण भक्त कवियों के अनुसार कृष्ण स्वयं गोपियों की ओर आकर्षित है और अपनी मन को हर लेने वाली अटखेलियों से गोपियों को रिझाते है। साथ ही कृष्ण भक्ति साहित्य में गोपियों की कृष्ण प्रेम की एक-निष्ठता, दृढ़ता और कृष्ण प्रेम समर्पण की पराकाष्ठा के दर्शन होते है। इस प्रकार कृष्ण भक्त कवियों द्वारा रचित काव्य तत्कालीन समय की प्रासंगिकता को आभ्यासित कर रचा गया काव्य है।

७.२.५ अन्य देवों की आराधना:

यह हमें ज्ञात है कि कृष्ण भक्ति काव्य धारा के आधार स्तंभ श्री कृष्ण है। अधिकांशतः सम्पूर्ण काव्य कृष्ण लीला से भरा पड़ा है लेकिन हिन्दू संस्कृति में तैतीस हजार कोटि देवों को स्थान प्राप्त है इसी अनुसरण से कृष्ण भक्त कवियों द्वारा अधिक तो नहीं परंतु यत्र तत्र अन्य देवों की उपासना का उल्लेख है। राम भक्त कवि तुलसी दासजी ने कईयों काव्य ग्रंथ लिखे | कृष्ण चरितावली में कृष्ण की आराधना की लेकिन उनका राम भाव से प्रेरित ओत-प्रोत मन राम नाम से तनिक भी दूर न हो पाया। कृष्ण के साथ राम नाम को जोड़ना वे भूले नहीं:

'राम - स्याम सावन – भादौ, बिनु जिय की जरनि न जाई।'

कवि नरसिंह ने कृष्ण की अपार भक्ति के साथ शिव, नारद, लक्ष्मी आदि देवी देवताओं की स्तुति की है:

'शिव विरंची जेनूं ध्यान धेरे रे, ते तू जने लाड़ लडावो।'

कवि दयाराम ने भी शिव, लक्ष्मी, गणेश, सूर्य देव, श्री जी और विष्णु, पार्वती, सीता आदि देवों की उपासना की है। वहीं मीरा भी कृष्ण के साथ शिव की भी वंदना करता है:-

'सिव मठ पर सोहै लाल छूआ ।।'

उत्तर सिखर पर गौरि विराजे, दच्छिन सिखर पर बम भोला ।

इस प्रकार अंग देवी देवताओं की आराधना सभी कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में वर्णित है ।

७.२.६ प्रकृति वर्णन:

कृष्ण भक्त कवियों ने काव्य रचना को बाललीला वर्णन से अधिक माधुर्यता और वात्सल्य प्रधान बनाया है । श्री कृष्ण स्वयं प्रकृति के सान्निध्य में पले बढ़े हुए तो श्री कृष्ण के साथ प्रकृति का समावेश काव्य में होना स्वभाविक है । प्रकृति कृष्ण भक्ति काव्य की शोभा बढ़ाने वाली सहायक रूप है । कृष्ण भक्त कवियों ने ब्रज मंडल के प्राकृतिक सौंदर्य को अपने काव्य में स्थान दिया है इन्होने गोकुल, गोवर्धन, यमुना तट आदि स्थानों का वर्णन किया है, वन, उपवन, पर्वत, नदी, वृक्ष, कुंज, लता, फल, फूल, पक्षी, ऋतु मास और सभी प्रकार के वन्य जीव, जन्तुओं के वर्णन ने प्रकृति की छटा कृष्ण भक्ति काव्य में बिखेरी है । सूरदासजी का प्रकृति वर्णन उनके ज्ञान दर्शन का आभास कराता है उन्होंने ब्रम्हांड के सातों द्वीपों का वर्णन इस प्रकार किया है:

'सातों द्वीप कहे सुकमुनि ने सोई कहत अब सूर ।

जंबु, प्लक्ष, क्रौच, शाल्मलि, कुश, पुष्कर भरपूर ।।"

कृष्णदास ने वृंदावन का वर्णन इस प्रकार किया है:

'देखौ राधा – माधौ वन – विहार, तहा प्रफुल्लित है केसु अपार

गोवर्धन-धर स्याम चंद्रमा, जुबतिन-लोचन तारौ ।'

नंददास के काव्य में गोकुल की प्रकृति का वर्णन इस प्रकार है:

'जह नग, खग, मृग, लता कुंज विरुध-तन जेते ।'

'दूरि दुरि वन की ओट कहा हिय लोन लगावै ।'

कृष्ण काव्य में प्रकृति वर्णन संयोग और वियोग दोनो प्रकार की अवस्था में पराकाष्ठित रूप में मिलता है । संयोग अवस्था में प्रकृति झूमती, नाचती, हरी भरी और कृष्ण के साथ मग्न दिखायी है वहीं कृष्ण के मथुरा गमन पश्चात् गोकुल वासियों के समान प्रकृति भी कृष्ण वियोग में व्याकुल दृष्टिगत होती है:

'अहो अब अहो निंब कदंब क्यों रहे मौन गहि ।।'

७.२.७ रीति तत्वों का समावेश:

कृष्ण भक्ति साहित्य निश्चल प्रवृत्ति से मन को माधुर्य, भक्ति और वात्सल्य भाव से भर देता है । लेकिन कृष्ण भक्ति शाखा के कुछ कवियों ने श्रृंगार वर्णन में साथ रीति तत्वों का समावेश भी किया है । इसके अंतर्गत प्रमुखत: नायक-नायिका भेद वर्णन प्रमुखता से सूरदासजी

रचित साहित्य लहरी और नंददास रचित रूप मंजरी और रसमंजरी रचनाओं में उल्लेखित है। नंददास की उक्त रचनाओं में नायिका के नौ भेद और नायक के चार भेद बताये है।

कृष्ण भक्ति काव्य और अष्ट छाप के अन्य कवियों ने भी नायिका भेद का वर्णन यदा-कदा किया है।

'किशोरी अंग अंग भेंटी स्यामहि।

कृष्ण तमाल तरल भुज साखा, लटकी मिली ज्यों दामहीं।'

७.२.८ सामाजिक लोकाचार की प्रतिबद्धता:

भारतीय जन-मानस कुछ विशिष्ट नियमों को लेकर जीवन व्यतीत करता है ये नियम पीढ़ियों से चले आ रहे है। प्रत्येक व्यक्ति उन नियमों के प्रति आदर-सद्भावना रखता है। कृष्ण काव्य कालीन समाज इन नियमों की उपेक्षा धर्म अवहेलना के समान मानता था। इन नियमों की झलक हमें संस्कारों का निर्वाह, उत्सव त्योहार के माध्यम से देखने को मिलती है। संयुक्त परिवार प्रणाली, बड़े बुजुर्गो का आदर, गुरु का सम्मान, पूजा-पाठ, नित्य-नियम, जीवन में १६ संस्कार जो जन्म से मृत्यु तक निभाये जाते है, समय समय पर तीज - त्योहार आदि अनेक प्रसंग कृष्ण काव्य में कृष्ण को आधार मान रचित है। कुंभनदासजी ने कृष्णजन्म के समय जातकर्म संस्कार का वर्णन इस प्रकार किया है:

'नंद महरि के पूत भयौ।

उड़त नवनीत दूध, दही, हरद, तेल, बही चली आतुर सिंधु सरिता सबै।'

दीपावली त्योहार का वर्णन:

'झलमल दीप समीप सौंज भरि लेकर कंचन थालिका।

गावत हँसत गताय हंसावत पटकि करतालिका ॥'

रक्षाबंधन त्योहार का वर्णन:

'राखी बंधावत मगन भाए

दक्षिणा बहुत द्विजन कौ दीनी, गोप हंकार लाए।'

७.२.९ प्रेम की आलौकिकता:

कृष्ण भक्ति काव्य ज्ञान की अपेक्षा प्रेम का चिंतन करने वाला है। इसका सबसे ठोस उदाहरण कृष्ण के मथुरा गमन पश्चात उद्धव को गोपियों को समझाने बुझाने के लिए गोकुल भेजा जाता है। उद्धव जो कि ज्ञानवान बुद्धिमान माने जाते है वह भी कृष्ण प्रेम में डूबी गोपियों के आगे हार मान लेते है। उद्धव के निर्गुण वाद, परम ब्रम्ह और आत्म चैतन्य के उपदेशों को गोपियाँ कृष्ण के प्रति एक निष्ठ प्रेम भाव, आत्म समर्पण, सगुण भाव और प्रबल युक्ति से हार जाते है –

'उधो मन नाही दस बीस।

एक हुतो सो गयो स्याम संग को आराधै ईस।'

७.२.१० पात्र एवं चरित्र-चित्रण:

कृष्ण कथा के नायक श्री कृष्ण अवतार रूपी मानव है। कृष्ण महाभारत के नीति कुशल, व्यवहारी योद्धा न होकर गोकुल गांव में नंद-यशोदा के बाल-गोपाल है, साँवले-सलोने नट-खट भाव लिए सभी को अपनी और आकर्षित करने वाले है। कृष्ण काव्य में कृष्ण के साथ-नंद यशोदा गोप-गोपी, सखा उद्धव, भ्राता बलराम आदि पात्रों का उल्लेख है। नायिका रूप में राधा वर्णन के बिना कृष्णवर्णन अधूरा ही माना जाएगा यत्र-तत्र वासुदेव, देवकी का वर्णन मिलता है जो कृष्ण के जन्मदाता है | मामा कंस को बुराई की प्रवृति रूप में दिखाकर नष्ट कर दिया गया है। इस प्रकार कथा की सार्थकता हेतु कई पात्रों का यथेष्ट वर्णन किया गया है।

७.२.११ ऐतिहासिक पक्ष:

कृष्ण काव्य धारा का तत्कालीन परिवेश सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक सांस्कृतिक आदि सभी दृष्टि से देखा जाए तो अत्यंत दयनीय अवस्था थी। परंतु साहित्यगत दृष्टि से देखा जाए तो कृष्ण भक्ति साहित्य पर उस समय का दिल्ली की राजनीति का कोई असर दिखाई नहीं देता। सूरदास और अन्य अष्ट छाप कवियों ने वल्लभ सम्प्रदाय का परिचय दिया है और उनके नित-नियमों को मान कृष्ण स्वरूप में मानों लीन हो कृष्ण भक्ति आत्म समर्पण भाव से की है।

७.२.१२ संगीत स्वर भाव:

श्री कृष्ण भक्तिकाव्य में कृष्ण लीला गान, कीर्तन, भजन, रास के माध्यम से हुआ है। कृष्ण भक्त सभी कवियों ने रास के माध्यम से रस सिद्ध गायकी को वर्णित किया है। अष्टछाप के कुशल कवि व संगीतज्ञ गोविंदस्वामी की कविताओं में प्रत्येक राग का उल्लेख हुआ है। साथ ही वाद्य यत्रों का भी कवि ने विशेष वर्णन किया है।–

'सप्तसूर तीनि ग्राम इक्कीस मूर्च्छना बाइस सित मति राग मध्य रंग राख्यो।

सरगम प ध नि सा ससस न न न ध ध ध ध ध ध प प - ।'

'नाचत गावत करत कुलाहल, फुली अंग न समात

घर घर मंगला चार मुद्रित मन उमंगै ब्रजवासी ।'

इस प्रकार संगीत, नृत्य, सांस्कृतिक परिवेश की दृष्टि से तीज-त्योहार-उत्सव के समय रुचि अभिरुचि के आधार पर जल्लोष और उमंग के साथ किये जाते थे। तत्कालीन समय में आनंद व्यक्त करने और मनोरंजन के तौर पर संगीत, नृत्य वाद्ययंत्र का प्रयोग होता था।

वाद्ययंत्र:

'ताल मृदंग, झांझ और झालरी बाजत सरस सुगंध।

दुंदुभी, झांझ, मुरज, डफ, वीणा, मृदंग, उपगै तार।'

७.२.१३ काव्य शैली:

७.२.१३.१ भाषा:

कृष्ण भक्त कवियों ने ब्रज भाषा में रचना कर, ब्रजभाषा को साहित्य में एक विशिष्ट स्थान पर पहुँचाया है। कृष्ण काव्य में सम्पूर्ण विकसित रूप ब्रज भाषा का ही है परंतु प्रारंभिक समय का कृष्ण काव्य अवधी, अपभ्रंश, शौरसेनी और पिंगल भाषा के शब्दो का प्रयोग समय और देशकाल, वातावरण के अनुरूप हुआ है।

शब्दावली में शब्दों को राग और लय के अनुरूप बदल दिया है जैसे –

अलि को अली, निशा को निसी, अगाध को अगह आदि

तत्सम शब्द: दधि, मंत्र, खंजन, अग्नि, भुजंग लता आदि

तद्भव शब्द: यशोदा को जसुदा, जन्म को जनम, आशा को आसा, पुष्प को पुहुप आदि।

देशज शब्द: बिताना, चोटी, डेरा, दीठ आदि

विदेशी शब्द: दरवाजा, बजार, परवाह, महल, निसान सिकार आदि

इस प्रकार ब्रज भाषा के साथ तत्कालीन समय की जन भाषा की शब्दावली का परिपूर्ण प्रयोग कृष्ण भक्त कवियों ने किया है।

७.२.१३.२ रस:

कृष्ण भक्त कवि पूर्णत: भक्तिभाव के रस में डूबे हुए थे। उन्होंने अपने आराध्य के जीवन के सभी भावों को काव्य में पिरोने की कोशिश की है। भक्ति भाव में विभोर कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में रस की प्रचिति आयोजन अनुरूप न होकर अनायास ही हुई है।

श्रृंगार रस को रसों का राजा कहा जाता है क्योंकि यह रस सर्वाधिक आनंददायी होने के साथ सुंदरता और मधुरता की पहचान है। श्री कृष्ण को श्रृंगार का राजा माना जाता है। कृष्ण काव्य में कृष्ण-राधा गोपियों की रास लीला, राधिका का सुन्दर रूप कृष्ण की मनमोहक छबि, ब्रज की प्रकृति सभी श्रृंगार रस से ओत प्रोत है। श्रृंगार रस के दो प्रकार है संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार।

संयोग श्रृंगार का वर्णन इस प्रकार है:

'झूलत राधा मोहन कालिंदि के कूल।

सूखी सबै चहुं दिस तै आई कमल नयन ओर,

बोलत वचन सुहावने 'नंददास' चितचोर।'

वियोग श्रृंगार:

कृष्ण जब मथुरा चले जाते है उस समय गोकुल में कृष्ण की याद में यशोदा गोप-गोपियां, राधा, नंद सभी जन-वासी कृष्ण को याद कर दू:खी हो जाती है अपनी सुध-बुध खो बैठती है – वियोग श्रृंगार का ऐसा वर्णन अधिकांश कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में हुआ है।

'अब दिन – राती पहार से भाए

तब ते निघटत नाहीन जब ते हरि मधुपुरी गए ।'

कृष्ण काव्य में श्रृंगार रस की अधिकता है परंतु नव रस का प्रयोग या भाव कृष्ण काव्य में हमें मिल जाते है जैसे-शांत रस, अद्भुत रस हास्य, रस, वीर रस, करूण रस, रौद्र रस, भयानक रस, विभत्स रस वात्सल्य रस।

७.२.१३.३ अलंकार:

कृष्ण भक्त कवियों ने प्रकृति वर्णन लोक प्रसिद्ध तथा शास्त्र सम्मत तत्वों को काव्य की परिधि माना है। काव्य सौंदर्य की इस पराकाष्ठा से काव्य सिद्धांतो का निर्माण होता है यही कारण है कि कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में अलंकारों का सफल रूप देखने को मिलता है। अलंकार सौंदर्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत अतिश्योक्ति, वक्रता मूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक हुआ है जैसे –

उपमा अलंकार:

'दुतिया के ससी लौ बाढे सिसु।'

रूपक अलंकार:

'स्याम रूप चरी आई जब ते हरि आई अंखिया भई री मेरी।'

७.२.१३.४ शब्द शक्ति:

शब्द शक्तियां तीन प्रकार की होती है अमिधा, लक्षणा व्यंजना। कृष्ण भक्त कवियों ने लक्षणा शब्द शक्ति का परिपूर्ण वर्णन किया है लक्षण के दो भेद – रूढ़ी लक्षणा और प्रयोजन वती लक्षणा का वर्णन कृष्ण भक्ति के सम्पूर्ण काव्य में है । साथ ही तत्कालीन समय की परिस्थिति के अनुरूप व्यंजना शब्द शक्ति का पूर्ण सार्थक वर्णन कृष्ण काव्य में हुआ है क्योंकि कृष्ण काव्य संयोग, व्योग, विरोध अर्थ, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, व्यक्ति, स्वर अभिनय, वक्ता, प्रस्ताव, चेष्टा आदि परिस्थितियों से भरा पड़ा है।

लक्षणा शब्द शक्ति:

'करत प्रवेश रजनी मुख ब्रज में देखत रूप हृदय मैं अटकत।'

व्यंजना शब्द शक्ति:

'घट में गंगा घट में जमुना कासी भटकत कौन फिरै।'

७.३ सारांश

कृष्ण काव्य सरस काव्य के रूप में सर्वाधिक प्रचलित काव्य है। सूरदासजी जैसे महान कवि जो नेत्रहीन थे फिर भी उनकी भक्ति का मनोभाव आसमान को छेड़ने जैसा था उनके जैसा कृष्ण बाल लीलाओं का वर्णन अन्यत्र असंभव है। कृष्ण भक्ति काव्य स्वांत सुखाय काव्य है इसीलिए कृष्ण काव्य पाठक के मन को भाव-विभोर कर उसे कृष्ण भक्ति में अनायास ही लीन कर देता है।

७.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१. कृष्ण भक्ति काव्य की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

७.५ लघुत्तरीय प्रश्न

१. अष्टछाप के संस्थापक कौन है?

उत्तर: विट्ठल नाथ

२. कृष्ण भक्तिकाव्य धारा के प्रमुख कवि कौन माने जाते है?

उत्तर: सूरदासजी

३. 'भक्तन को कहा सीकरी काम' किस कवि द्वारा लिखित पक्तियाँ है?

उत्तर: कुंभनदास

४. कृष्ण भक्ति कवि मीरा ने कौनसी भाषा में अपने भाव व्यक्त किये?

उत्तर: राजस्थानी

५. कृष्ण भक्ति साहित्य पर किन सम्प्रदायों का गहरा प्रभाव रहा?

उत्तर: चैतन्य, हित, हरिवंश, अष्टछाप, हरिदास और राधा स्वामी संप्रदाय।

७.६ संदर्भ पुस्तकें

१. भक्ति काव्य यात्रा- राम स्वरूप चतुर्वेदी

२. हिन्दी भक्ति काव्य – राम रतन भटनागर

३. अष्टछाप कवियों के काव्य में लोकतत्व - डॉ. संध्या गर्जे

*****

८

रीतिकाल

इकाई की रूपरेखा

८.० इकाई का उद्देश्य

८.१ प्रस्तावना

८.२ रीतिकाल की पृष्ठभूमि

- ८.२.१ राजनीतिक
- ८.२.२ सामाजिक
- ८.२.३ सांस्कृतिक
- ८.२.४ साहित्य एवं कला

८.३ सारांश

८.४ लघुत्तरीय प्रश्न

८.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

८.६ संदर्भ पुस्तकें

८.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के बाद निम्नलिखित मुद्दों से परिचय होगा।

- रीतिकाल का वर्गीकरण एवं उसकी पृष्ठभूमि को समझ पाएँगे।

८.१ प्रस्तावना

रीतिकाल अराजकता का काल रहा है । वहीं काव्यगत दृष्टी से रीतिकालीन काव्य श्रृंगारिकता प्रधान काव्य रहा है। दरबारी संस्कृति के उद्भव के कारण मनोरंजन के हेतु से दरबार में कवियों का कविता प्रस्तुतिकरण होता था। अधिकांश रचनाएँ लोलुपता और झूठी प्रशंसा से उन्मादित थी। लेकिन जड़ो में पनप रही शक्तिहीनता अनदेखी न हो सकी इसी कारण अव्यवस्था और असुरक्षा का वातावरण बनने लगा और बाहरी शासकों के हाथ राज्य और जनता शोषित होती रही।

८.२ रीतिकाल की पृष्ठभूमि

किसी भी साहित्य के निर्माण में उस समय का युगीन वातावरण का मुख्य योगदान होता है, इसीलिए आचार्य शुक्ल कहते है कि "साहित्य जनता के चित्तवृत्तियों का इतिहास होता है जिसके माध्यम से तत्काल परिवेश के बारे में जानकारी होती हैं। उस वातावरण के निर्माण में राजनीति, संस्कृति और साहित्य कला का महत्त्व पूर्ण योगदान होता है और साहित्य के

अध्ययन के लिए उस समय के युगीन परिस्थितियों की जानकारी होना अनिवार्य हो जाता है।" साहित्य के विविध कलाओं का निर्माण तत्कालीन समाज के परिस्थितियों पर निर्भर होता है और साहित्य उस समय का इतिहास बन जाता हैं। जिस प्रकार एक साहित्य का असर पड़ता है उसी प्रकार एक साहित्य का निर्माण भी समाज की पृष्ठभूमि पर निर्भर होता है। मुगलो की सत्ता आने के बाद समाज की परिस्थिति बदल गई थी, जिसके कारण राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक रूप से प्रभाव रहा हैं।

८.२.१ राजनीतिक:

रीतिकाल में पूर्ण रूप से शासन मुगलों के हाथो में था | भारत में इस काल को चरमोत्कर्ष और उसके बाद उत्तरोत्तर ऱ्हास, पतन और विनाश का युग कहा जा सकता है और अंग्रेजों का आगमन काल देखा जा सकता है। मुगलो में उस समय का शासन काल शाहजहां का था। जहाँगीर के बाद शाहजहाँ ने ही मुगल सत्ता का विस्तार किया और उसी समय ताजमहल और मयूर सिंघासन जैसे ऐतिहासिक वैभव का निर्माण किया गया। शाहजहां के मृत्यु की खबर फैलाने के पश्चात १६५८ ई. में उसके पुत्र औरंगजेब और दाराशिकोह के बीच सत्ता के लिए संघर्ष प्रारंभ हो गया और दारा की हत्या कर औरंगजेब ने सिंहासन पर अधिकार जमा लिया उसके उपरान्त जागीरदारों, राजाओ और हिन्दुओं में धार्मिक उपद्रव आरम्भ हो गए। औरंगजेब ने अपने तानाशाही शासन से सभी पर राज किया।

१७०७ ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके द्वितीय पुत्र शाहआलम गद्दी पर बैठे और १७१२ ई. में मुगल साम्राज्य का पतन प्रारंभ हो गया। छोटे-छोटे जागीरदार स्वयं को स्वतंत्र घोषित करने लगे। विलासिता इतनी अधिक होने लगी जिससे मुगलों की केंद्र सत्ता की पकड़ धीरे-धीरे ध्वस्त होने लगी। उसके बाद १७३८ ई. में नादिरशाह के आक्रमण ने मुगलों की नीव हिला दी और बाद में १७६१ ई. में अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण ने उनका साम्राज्य पूरी तरह ध्वस्त कर दिया। इस आक्रमणो का पूरा लाभ विदेशी व्यापारियों ने ले लिया और अंग्रेज भीतर-ही-भीतर शक्ति के रूप में १८०३ ई. में उत्तरी भारत पर अपना अधिकार जमा लिया और मुगल सिर्फ नाममात्र के लिए ही शासक रह गए। उसके बाद १८५७ ई. के विद्रोह के पश्चात् फिर से मुगलो ने सत्ता को स्थापन करने का प्रयास किया लेकिन वह भी असफल रह गए।

केंद्र शासन की स्थिति भी रीतिकाव्य के रचना के क्षेत्र में अवध, राजस्थान, बुंदेलखंड की कथा भी इसी प्रकार की है; जिसमे अवध के विलासी शासको का अंत भी मुगल साम्राज्य के समान ही रहा हैं। राजस्थान में भी विलासी प्रवृत्ति और बहु पत्नी प्रथा के कारण राजपुरुष भी आंतरिक कलह के शिकार हो गए। बुंदेलो के भले ही मराठों से लाभ उठाने का प्रयत्न किया परन्तु पारंपरिक द्वषों के कारण सफल न रहे और मुगल साम्राज्य की तरह ही हिन्दु रजवाड़ों का अंत हो गया। इस प्रकार मुगलों के पतन का यह काल रहा जहाँ सिर्फ विलासिता रहने के कारण अराजकता ने जन्म लिया।

८.२.२ सामाजिक:

सामाजिक दृष्टि से भी यह काल विलासिता का युग कहा जाना चाहिए। इस काल में सामंतवादी प्रवृत्ति का अधिक बोलबाला है। सामंतवाद के दोष सर्वत्र व्याप्त थे। जिसका

असर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सामान्य जनता पर पड़ रहा था। विलासी शासको, सामंतो अधिकारियों मनसबदारो के अधिपत्य के कारण जनता उसमें शोषित हो रही थी। ऊपर से लेकर नीचे तक शासकों का वर्ग था। शोषित वर्ग में कृषक, मजदूर थे जिनपर अधिक कर लादकर साहूकार शोषण कर रहे थे। सामान्य जनता के लिए चिकित्सालय, शिक्षा, आदि का भी कोई प्रबंध नहीं था। कार्य सिद्धि के लिए उत्कोच लिया करते थे। विलासिता भी उस समय चरम सीमा पर थी जिसमें विलासिता की बढती प्रवृत्ती के कारण नारी को अपनी संपत्ति मानकर उनका भोग करना सामान्य हो गया था। विलास के उपकरणों का संग्रह करना एवं विलासिता में लीन रहना उच्च वर्ग के जीवन का एक मात्र लक्ष हो गया था। मध्यम वर्ग भी उन्ही का अनुसरण करता था। विलासिता में डूबे होने के कारण वे अपने संतान की भी देखभाल नहीं कर पाते थे। शिक्षक तो इस प्रकार होते थे जो काम कलाओं की शिक्षा देकर कामुकता को पूर्ण करते थे। लडकियों के साथ छेडछाड, अभद्र व्यवहार, राजकुमारों की दिनचर्या हो गई थी। विलासी माता पिता की संताने अनैतिक कार्यो में लीन थी। विवाहित स्त्रियाँ भी पति से प्रेम ना पाने के कारण अनैतिक सम्बन्ध बनाती थी। इस प्रकार उस समय की सामाजिक परिस्थिति बड़ी भयानक थी जहाँ पर सिर्फ शोषण, अत्याचार, भोग, विलासिता ही सभी जगह व्याप्त थी।

८.२.३ सांस्कृतिक:

सामाजिक परिवेश के सामान ही सांस्कृतिक परिवेश भी दयनीय अवस्था में थी। जहाँ अकबर, जहांगीर, शाहजहाँ की उदार नीति के कारण हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियो मे जो समन्वय के भाव थे वे औरंगजेब के शासनकाल में धार्मिक कट्टरता के कारण छिन्न-भिन्न हो गए। विलासिता के कारण धार्मिक आस्थाओं का पालन करना कठिन हो गया था। वे अपने झूठे पराक्रम, दान की प्रशंसापरक कविता सुनने और भोग-विलास का उद्दीपन करने वाली रचनाओं में ही रुचि रखते थे। ऐसा काव्य दरबारी कहलाता है, जो आश्रयदाताओं की रुचि को ध्यान में रखकर उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए रचा जाता है। मंदिरों, मठो के पीठाधीश अपनी लोभी प्रवृत्ति के कारण राज और सेठों को गुरु दीक्षा देकर भौतिक सुख प्राप्त कर रहे थे। मंदिरों में ऐश्वर्य और विलास होने लगे। हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही अपने सिद्धांतों से दूर होकर कर्मकांड और बाह्य आडम्बर की सीमा तक रहने लगे। ऐसी अवस्था में धर्म के साथ नैतिकता का जो सम्बन्ध था वह टूटने लगा था। धर्म स्थान पापाचार का केंद्र बन गये। जनता में अंधविश्वास बढ़ने लगे जिसका फायदा मुल्ला-मौलवी और पंडित-पुरोहित उठा रहे थे। उस समय भी पुरानी परम्परा के सूफी फ़कीर विद्यमान थे परंतु किसी पर भी कबीर, नानक तथा जायसी जैसी प्रतिभा नहीं थी। वे क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में असमर्थ थे। किसी पर भी उनकी वाणियों का कोई भी असर नहीं पड़ रहा था। इस प्रकार विलासिता के कारण धार्मिक संस्कृति भी ध्वस्त होती दिखाई दे रही थी और हर जगह अनास्था, अंधविश्वास बढता जा रहा था।

८.२.४ साहित्य एवं कला:

साहित्य कला की दृष्टि से इस युग में अनेक कलाएं विकसित हुई। भारत में अधिकतर मुगल शासन काल में ही कलाओं का विकास हुआ। मुगल राजा कला प्रेमी हुआ करते थे। अपने विलासिता को पूर्ण करने के लिए फारसी और हिन्दू शैली के सम्यक संयोग से ललित

कलाओं का निर्माण करवाया । मुगलो की अद्भूत और सौन्दर्य / कला आगरा के मोटी मस्जिद और ताजमहल के निर्माण से देखने मिलती हैं जो शाहजहाँ ने बनवाया था । इस काल के दरबारी कवि एवं कलाकार रहा करते थे और अपने आश्रयदाताओं से उन्हें इतना सम्मान मिलता था कि उनकी भी गणना सामंतों में होने लगी थी। अपने आश्रयदाताओं की अभिरुचियों को ध्यान में रख कर वे साहित्य कलाओं का निर्माण करते थे । मुगलों की राजकीय भाषा फारसी थी और भाषा फारसी होने के कारण अलंकार प्रधान शैली का प्रभाव इस युग के प्रत्येक भाषा पर पडा । उस समय काव्य भाषा के लिए ब्रजभाषा ही सबसे निकटतम भाषा थी। इस काल के प्रत्येक राजाश्रित कवि अपने राजाओं को प्रसन्न रखने के लिए उनकी प्रशंसा एवं श्रृंगारिक रचनाएँ करते थे।

जहाँ तक ललित कलाओं का सम्बन्ध रहा है चित्र कला भी काव्य के समान ही प्रचलित और समृद्ध रही हे । जहाँगीर का राजकत्व काल कला का स्वर्णयुग काल कह सकते हे । विशेष रूप से राजस्थान और पर्वतीय क्षेत्रो में भी चित्रकला के विभिन्न रूप देखने मिलते है । राजस्थान शैली में चित्रो का मुख्य विषय रागमाला थी । इसमें ऋतुओ का आश्रय लेकर शब्द को रेखाओ और रंगो में बद्ध किया जाता था। इस शैली में चित्रों का विषय कृष्णलीला, नायिकाभेद, बारहमासा रहा है।

औकांगड़ा शैली में चित्रों का विषय महाभारत, पुराण एवं दैनिक जीवन से सम्बन्धित बाते रही हैं । चित्रकला के अतिरिक्त संगीत का भी विशिष्ट स्थान रहा हैं । शिल्पकला की भी विशेष रूप से भव्यता रही है जिसमें शाहजहाँ द्वारा बनवाया गया आगरा का ताजमहल, दिल्ली के लाल किले, दीवाने खास विशेष रूप से उल्लेखनीय है । समग्र रूप से देखे तो साहित्य कला की दृष्टि से यह काल संपन्न और उत्कर्ष का काल कहा जा सकता है।

८.३ सारांश

प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थियों ने रीतिकाल का नामकरण एवं वर्गीकरण, सीमांकन, उसका शास्त्रीय विवेचन, रीति-ग्रंथों की परम्परा, रीतिकाल का वर्गीकरण और उसकी पृष्ठभूमि आदि का अध्ययन किया | किसी भी प्रकार के साहित्य के निर्माण के लिए उस समय का युगीन वातावरण का मुख्य योगदान होता है । इसी वातावरण के निर्माण में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्य कला का महत्वपूर्ण योगदान होता है । इसी योगदान से समाज के परिस्थितियों पर प्रभाव पड़ता है और उसी से इतिहास बनता है । यहीं रीतिकाल के अंतर्गत उद्घाटित किया गया हे।

८.४ लघुत्तरीय प्रश्न

१) आ. रामचंद्र शुक्ल को रीतिकाल के नामकरण की प्रेरणा किस विद्वान से मिली ?

२) 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल की संज्ञा किसने दी है?

३) 'रस सम्प्रदाय' के प्रवर्तक है -

४) 'काव्यविवेक' ग्रंथ के रचनाकार है -

५) सन १७०७ ई. में औरंगजेब के मृत्यु के बाद गद्दी पर कौन बैठा ?

६) बच्चन सिंह ने रीतिकाल को कितने भागों मे विभाजित किया है ?

८.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) रीतिकाल के नामकरण को स्पष्ट करते हुए शास्त्रीय विवेचन पर प्रकाश डालिए।

२) रीतिकाल का नामकरण और उसकी पृष्ठभूमि पर चर्चा कीजिए।

८.६ संदर्भ पुस्तकें

१) हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

२) हिंदी साहित्य का इतिहास - संपादक डॉ. नगेंद्र

३) हिंदी साहित्य का सरल इतिहास - विश्वनाथ त्रिपाठी

४) रीतिकाल - डॉ. नगेंद्र

*****

९

रीतिकालीन काव्य एवं प्रवृत्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

९.० इकाई का उद्देश्य

९.१ प्रस्तावना

९.२ रीतिबध्द काव्य-धारा

 ९.२.१ रीतिबध्द काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

९.३ रीतिसिध्द काव्य-धारा

 ९.३.१ रीतिसिध्द के प्रमुख कवि

 ९.३.२ रीतिसिध्द काव्य की प्रवृत्तियाँ

९.४ रीतिमुक्त काव्य धारा

 ९.४.१ रीतिमुक्त के कवि

 ९.४.२ रीतिमुक्त काव्य-धारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

९.५ सारांश

९.६ लघुत्तरीय प्रश्न

९.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

९.८ संदर्भ पुस्तकें

९.० इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के बाद निम्नलिखित मुद्दों से परिचय होगा।

- रीतिबध्द काव्य-धारा और उसकी प्रवृत्तियाँ को विस्तार जान सकेंगे।
- रीतिबध्द काव्य-धारा और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों से भलिभाँति परिचित हो सकेंगे।
- रीतिमुक्त काव्य-धारा और प्रमुख प्रवृत्तियों से अवगत हो पाएँगे।

९.१ प्रस्तावना

रीतिकाल में अधिकतर श्रृंगारिक रचनाएं केंद्र में रहीं और भक्ति प्रेम की प्रधानता क्रमशः कम होने लगी। परिणामतः भक्ति में जो प्रेम तत्त्व थे वो मूलतः लौकिक प्रेम में परिवर्तित होकर श्रृंगारिक होने लगे। इस प्रकार इस काल की रचनाएं श्रृंगार प्रधान तथा नायक-नायिका भेद, नखशिख-वर्णन एवं विविध क्रीडाओं का रसमयी शैली में विवेचन किया गया। सामाजिक परिस्थितियों को देख कर मुगलों के पतन का काल भी कह सकते हैं। इस समय हिंदी क्षेत्र में छोटे-छोटे राजे-नवाब थे जो केंद्रीय सत्ता द्वारा अनुशासित होते थे।

वीरगाथाकालीन सामंतों की तरह आपस में लड़ नहीं सकते थे । इस काल में घोर अराजकता, विलासिता के कारण सभी जगह अत्याचार और दुराचार का ही विस्तार था जहाँ राजा सिर्फ अपनी प्रसन्नता सुन कर उसी में मग्न रहते थे उनके आश्रित राजदरबारी कवि श्रृंगारिक रचनाएं लिख कर धन इकट्ठा किया करते थे । इस प्रकार इस काल में साहित्य में भावों की प्रधानता कम रही और अलंकारिकता अधिक रही । दरबारी कविता में एकरसता तो होती ही है, उसमें प्रधानतः मुक्तक ही रचने का अवकाश होता है, क्योंकि कवियों में आश्रयदाता के तत्काल प्रसन्न करने की होड़ होती है । इसीलिए चमत्कार-प्रियता, आलंकारिता, अतिशयोक्ति आदि दरबारी कविता की प्रवृत्तियाँ बन जाती है । इसके अतिरिक्त कुछ कवि वीर प्रधान काव्य भी लिखे गए । शिवाजी, छत्रसाल जैसे आश्रयदाता पराक्रमी राजा के लिए भूषण की कविताएँ श्रृंगारहीन होकर भी वीररसात्मक हैं । इसलिए यह समझना भूल होगी कि इस काल की सभी रचनाएँ दरबारी हैं । वस्तुतः दरबारीपन का विरोध भी इस काल की कविता में मिलता है, उत्कृष्ट प्रेम की कविताओं की भी कमी नहीं है रीतिकाल में । दरबारीपन तो रीतिकाल की एक प्रवृत्ति ही है ।

रीतिकाल में लक्षण ग्रन्थ लिखने की जो परिपाठी विकसित हुई वह संस्कृत के लक्षण- ग्रन्थ की रचना करनेवाले आचार्यों से रही हैं । रीतिकालीन कवि निरूपण की प्रक्रिया में लक्षण बताकर उदाहरण के रूप में प्रसिद्ध कवियों की रचनाएँ अपनी बात को सुस्पष्ट या प्रमाणित करने के लिए प्रस्तुत करते थे । लक्षण तो परंपरा से प्राप्त होते थे, उन्हें ग्रंथकार अपने शब्दों में प्रस्तुत कर देते थे, किंतु कविताओं में उनकी मौलिकता होती थी । इसीलिए कहा जाता है कि रीतिकाल के लक्षण-ग्रंथकार वस्तुतः कवि थे, आचार्यत्व को तो उन्होंने कविता करने का बहाना बना लिया था । फलतः हिंदी में आचार्य और कवि, दोनों एक ही व्यक्ति होने लगे । इस प्रणाली से इस काल में प्रचुर एवं उत्कृष्ट रचनाएँ हुई ।

रीतिकाल के साहित्य को प्रवृत्तिगत दृष्टि से आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त इन तीन भागों में विभाजित किया गया है ।

९.२ रीतिबद्ध काव्य-धारा

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसका रीतिकाल के अंतर्गत विभाजन किया है इसके अंतर्गत वो सभी काव्य आ जाते हैं जिसमें काव्यों का पद्धमय लक्षण प्रस्तुत कर स्व रचित काव्य प्रस्तुत किया गया हो और डॉ. नगेन्द्र इसे 'आचार्य कवियों का काव्य' कहा हैं । रीतिबद्ध काल के अंतर्गत उन कवियों को समावेश किया गया है जो रीति के बंधन में बंधे हुए है जिन्होंने लक्षण बद्ध, शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण कर रीतिग्रंथ की रचना की हैं । इस काल के अंतर्गत प्रमुख कवि - चिंतामणि, मतिराम, देव, जसवंत सिंह, कुलपति मिश्र, सूरती मिश्र, सोमनाथ, भिखारीदास, दूहल, रघुनाथ, रसिक गोविंद, प्रताप सिंह, ग्वाल ।

९.२.१ रीतिबद्ध काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ:

रीतिबद्ध कवियों ने अधिकांश रूप से काव्य में रस और अलंकार निरूपण पर ही बल दिया । इस काल के राजाओं की विलासितावृत्ति को तुष्ट करने के लिए राज्याश्रित कवि अनेक श्रृंगारिक रचनाये लिखते थे; और इस काल की श्रृंगारिकता ही प्रमुख प्रवृत्तियों में से एक थी

। राजाओं के पराक्रम की प्रशंसा में अनेक लक्षणबद्ध रचना लिखते गए जिससे कवियों को राजाओं द्वारा अधिक धन प्राप्ति हो जाती थी। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं -

१. कवि कर्म और आचार्य कर्म का सम्बन्ध:

संस्कृत में साहित्यशास्त्र का निरूपण, विवेचन तथा सिद्धांत का प्रतिपादन करना आचार्यों का काम था। संस्कृत साहित्य में कवि कर्म और आचार्य कर्म को पृथक माना गया हैं। लेकिन राजाश्रित दरबार में साहित्य शास्त्र का निरूपण करनेवाला एक ही व्यक्ति आचार्य भी और कवि भी था लेकिन आचार्य शुक्ल ने शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण करने के पश्चात भी इन कवियों को आचार्य की संज्ञा नहीं दी रीतिग्रन्थ की रचना करने वाले कवियों के आचार्यत्व पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए आचार्य शुक्ल लिखते है - 'हिंदी के लक्षण ग्रंथों की परिपाठी पर रचना करने वाले सैकड़ों कवि हुए वे आचार्य की कोटि में नहीं आ सकते वे वास्तव में कवि ही थे।" आचार्य की विशेषता को निर्धारित करते हुए कहते हैं कि 'आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन या पर्यालोचन शक्ति की अपेक्षा होती है उसका विकास नहीं हुआ।" रीति ग्रंथकारों का प्रमुख उद्देश्य कविता करना था शास्त्र विवेचन नहीं अतः कवि लोग एक ही दोहे मे अपर्याप्त लक्षण देकर अपने कवि कर्म में प्रवृत्त हो जाते थे। कवियों का उद्देश्य काव्यों का परिचय देना था। अपने कवित्त शक्ति का परिचय देना नहीं।

२. काव्य में श्रृंगारिकता:

रीतिबद्ध कवियों की दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति श्रृंगारिकता है। इन कवियों का श्रृंगार वर्णन एक ओर तो शास्त्रीय बन्धनों से युक्त है; तो दूसरी ओर विलासी आश्रयदाताओं की प्रवृत्ति ने इसे उस सीमा तक पहुँचा दिया जहाँ यह अश्लीलता का संस्पर्श करने लगा। नायक-नायिका भेद का निरूपण प्रायः इसी के अन्तर्गत किया गया है। इस काल में काव्य का मुख्य विषय नायिका भेद ही रहा है, जिसमे नायिका श्रृंगार रूप का आलंबन हैं और आलंबन के अंगों का वर्णन करना प्रमुख विषय हो गया। इस विषय पर कई ग्रंथों की रचना हुई। वस्तुतः इन कवियों को वह दरबारी वातावरण प्राप्त हुआ जिसमें व्यक्ति की दृष्टि विलास के समस्त उपकरणों के संग्रह की ओर ही रहती है। निर्द्वन्द्व भोग में ही जीवन की सार्थकता समझी गई और नारी को उपभोग की वस्तु मानकर देखा गया। पुरुष की समस्त चेष्टाएं उसे एक वस्तु के रूप में ही देखती हैं। विलास वृत्ति की प्रधानता के कारण इनकी सौन्दर्य दृष्टि भी अंग सौष्ठव, शारीरिक बनावट एवं बाह्य रूपाकार तक सीमित रही, आन्तरिक सौन्दर्य के उद्घाटन में उनकी वृत्ति नहीं रही।

नारी के प्रति सामन्ती दृष्टि होते हुए भी कहीं-कहीं स्वकीया प्रेम के दृश्य उपलब्ध हो जाते हैं, अन्यथा सर्वत्र बाह्य सौन्दर्य की प्रधानता दिखाई पड़ती है। संयोग चित्रण में जहां सुख वर्णन एवं विपरीत रति का चित्रण है, वहां अश्लीलता का समावेश हो गया है। वियोग वर्णन के अन्तर्गत रीतिमुक्त कवियों - घनानन्द, आदि ने हृदय की विकलता का मार्मिक एवं अनुभूतिपरक चित्रण किया। इस पर डॉ.भागीरथ मिश्र ने रीतिकालीन कवियों की इस श्रृंगारिकता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है - 'उनका दृष्टिकोण मुख्यतः भोगपरक था, इसलिए प्रेम के उच्चतर सोपानों की ओर वे नहीं जा सके। प्रेम की अनन्यता, एकनिष्ठता, त्याग, तपश्चर्या, आदि उदात्त पक्ष उनकी दृष्टि में बहुत कम आए हैं।"

३. भारतीय काव्यशास्त्र परम्परा का सुबोध वर्णन:

भारतीय काव्यशास्त्र में विभिन्न सम्प्रदाय रहे हैं लेकिन रीतिबद्ध कवियों ने विशिष्ट एक सम्प्रदाय के प्रति अपनी प्रतिबद्धता घोषित नहीं की क्योंकि इनका उद्देश्य काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का व्याख्या करना नहीं था बल्कि संस्कृत काव्यशास्त्र में रचित काव्यांगों को लोकभाषा में प्रतिपादन करना था। कवियों ने काव्यशास्त्रीय परम्परा को अपनाकर अपने अनुकूल भाषा में ग्रंथों की रचना करने के उपरांत उन्होंने आधार ग्रन्थ के रूप में श्रृंगार रस और नायिका भेद के लिए रसमंजरी, रस तरंगनी, चंद्रलोक आधार लिया। इसी प्रकार संस्कृत की काव्यशास्त्रीय रचना भी सरल रूप से लोकभाषा में भी उपयोग होने लगी।

४. आलंकारिकता:

रीतिकालीन कवियों के काव्य में अलंकार इनकी प्रमुख विशेषताओं में से एक है। कविताओं को विभिन्न अलंकारों के माध्यम वे दरबारी कवि रचनाएं करते थे और अपने कवि कर्म की सार्थकता समझते थे। अलंकारों के प्रति इनका मोह अति प्रबल था, अतः वे कविता में अलंकारों का अधिक प्रयोग करते थे। केशव तो अलंकार विहीन कविता को 'सुन्दर' मानते ही नहीं भले ही वह अन्य कितने ही गुणों से युक्त क्यों न हो इसलिए काव्य में अलंकारों की अनिवार्यता घोषित कर कहते हैं -

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुवरन सरस सुवृत्त।

भूषन बिनु न विराजई कविता बनिता मित्त॥

इस प्रकार कल्पना की ऊँची उड़ान, चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति एवं पाण्डित्य प्रदर्शन रीतिकालीन काव्य में आलंकारिकता के कारण ही आया है। यमक, श्लेष, अनुप्रास जैसे शाब्दिक चमत्कार की सृष्टि उसमें पर्याप्त की गई है तो दूसरी ओर उसमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति जैसे - भाव निरूपक अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। रीतिबद्ध कवियों के लिए अलंकार शास्त्र की जानकारी एक अनिवार्यता थी, क्योंकि इसके बिना उसे सम्मान मिलना कठिन था, परिणामतः इस काल में आलंकारिकता खूब फली-फूली। अलंकार जो कविता का 'साधन' है। इस काल में 'साध्य' बन गया।

५. आश्रयदाताओं की प्रशंसा :

रीतिबद्ध के अधिकांश कवि राजदरबारों में आश्रय प्राप्त थे। देव, भूषण, सूदन, केशव, मतिराम, आदि सभी प्रसिद्ध कवि राजदरबारों से वृत्ति प्राप्त करते थे, अतः यह स्वाभाविक था कि वे अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में काव्य रचना करते। देव ने अपने आश्रयदाता भवानी सिंह की प्रशंसा में 'भवानी विलास' लिखा तो सूदन ने भरतपुर के राजा सुजानसिंह की प्रशंसा में 'सुजान चरित' की रचना की। वीर रस के प्रसिद्ध कवि भूषण ने शिवाजी की प्रशंसा में 'शिवा बावनी' एवं छत्रसाल बुन्देला की प्रशंसा में 'छत्रसाल दशक' की रचना की। भूषण जैसे कुछ को यदि छोड़ दिया जाए तो रीतिकाल के अधिकांश कवियों द्वारा की गई आश्रयदाताओं की प्रशंसा अतिशयोक्तिपूर्ण है। कवियों का गुणगान करना अनचाही विवशता थी। कवियों को दरबार से बाहर करने के लिए भी षड्यन्त्र चलते रहते थे, अतः आश्रयदाताओं को प्रसन्न रखने के लिए उन्हें प्रयत्नशील रहना पड़ता था। स्वतः स्फूर्त

काव्य रचना की प्रवृत्ति राजनीतिक जोड़-तोड़ एवं दांव-पेच में लीन इन कवियों में हो ही नहीं सकती थी।

६. प्रकृति – चित्रण:

प्रकृति का वर्णन भी रीतिबद्ध कवि अलंकार के रूप में किया करते थे। रीतिबद्ध कवियों ने आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण प्रायः बहुत कम हुआ है जबकि आलंकारिक रूप में तथा उद्दीपन रूप में अधिक हुआ है। परम्परागत रूप में षड्ऋतुवर्णन एवं बारहमासा का चित्रण भी उपलब्ध होता है; किन्तु उसमें मौलिकता एवं नवीनता नहीं है । देव, मतिराम, भिखारीदास आदि कवियों के प्रकृति चित्रण इसी प्रकार के हैं। सेनापति प्रकृति चित्रण की दृष्टि से रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि माने गए हैं। उनके द्वारा किया गया वर्षा ऋतु का वर्णन उल्लेखनीय है जैसे

सेनापति उनए नए जलद सावन के
चारिहू दिसान घुमरत भरे तोय कै।
सोभा सरसाने न बखाने जात केहू भांति।
आने हैं पहार मानों काजर के ढोय कै॥

इसी प्रकार रीतिबद्ध के एक अन्य कवि पद्माकर का वसंत वर्णन भी अत्यन्त मनोहारी बन पड़ा है। यथाः

द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में
देखी दीप दीपन में दिपत दिगंत है।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में वेलिन में
बनन में बागन में बगर्यो वसंत है॥

प्रकृति के अनेक उपमान-कमल, चन्द्रमा, चातक, हंस, कोयल, मेघ, पर्वत, पुष्प आदि लेकर इन्होंने नायिका के अंग-प्रत्यंगों का सुन्दर चित्रण किया है।

७. ब्रजभाषा का प्रयोग:

रीतिकालीन कवियों की काव्य रचना ब्रजभाषा में रही है । रीतिकाल में केवल ब्रजक्षेत्र के कवियों ने ही ब्रजभाषा में काव्य रचना नहीं की अपितु ब्रजक्षेत्र के बाहर के हिन्दी कवियों ने भी ब्रजभाषा में ही काव्य रचना की। जैसे - 'भिखारीदास' जी ने लिखा है:

ब्रजभाषा हेत ब्रजवास ही न अनुमानौ
ऐसे ऐसे कविन की बानी हु सौं जानिए।

स्पष्ट है कि रीतिकाल तक आते-आते ब्रजभाषा व्यापक काव्य भाषा के रूप में स्वीकृत हो चुकी थी । रीतिकालीन ब्रजभाषा अपने शब्द-सौष्ठव, अनुप्रासंगिकता, मधुरता एवं

पदलालित्य के कारण काव्यभाषा के लिए पूर्ण उपयुक्त बन चुकी थी, किन्तु उसमें कवियों ने मनमानी तोड़- मरोड़ थी।

८. आलोचनात्मक दृष्टि का अभाव:

रीतिबद्ध कालीन कवियों में आलोचनात्मक दृष्टि का अभाव रहा हैं उनका उद्देश्य सिर्फ कवि शिक्षा ही रहा हैं इसलिए उन्होंने सिर्फ काव्य शास्त्रीय ग्रंथो का अनुवाद मात्र किया। उन्होने लक्षणों के आधार पर साहित्य की रचना कर साहित्यिक योगदान दिया हैं। दरबारी प्रवृत्ति के कारण उन्होंने काव्य स्तुति में ही कार्य किया उनकी दृष्टि आलोचनात्मक नहीं बन पायी वे भले ही काव्यशास्त्रीय ग्रंथो का निरूपण किया सिर्फ काव्यों में अलंकारिकता और शास्त्रीयता लाने के लिए आलोचना नहीं की उनमें प्रायः आलोचनात्मक दृष्टि का अभाव रहा हैं।

९. जीवन के प्रति एहिक दृष्टिकोण:

रीतिबद्ध कवियों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण एहिक रहा हैं वे आदर्शवादी नहीं थे। वे भक्तिकाल के कवियों के भाति संसार के सुख दुःख को छोड़कर वैराग्य धारण करना उनका प्रतिपाद्य नहीं था। वे ऐहिक जीवन के विभिन्न अंगों को देख नहीं पाएं इसीलिए उनके जीवन में तत्काल परिस्थिति तथा जीवन के विलासी अंक का चित्रण किया। जिस परिवेश में रहते थे वे उसी का चित्रण करते थे उनका दृष्टिकोण यथार्थवादी रहा हैं। वे उस समय के समाज को काव्य में अभिव्यक्त करते थे जो उनके ग्राहक थे। उनका समर्पण राजा-रजवाड़ों, सामंतों के प्रति रहता था। इसके अलावा भी वे समाज के अन्य वर्गों के जीवन का भी परोक्ष चित्रण करते हैं। उनके काव्य में लक्षण के उदाहरण स्वरूप कल्पना के साथ-साथ अपने युग के सामाजिक जीवन की विविध रंग छटाएं भी विद्यमान थी।

९.३.२ रीतिसिद्ध काव्य की प्रवृत्तियाँ:

रीतिसिद्ध काव्य कवियों से विशेषताओं के कारण भिन्न हैं इन्होंने कभी रीति ग्रन्थ परम्परा के अनुसार शास्त्रीय बद्ध रचना नहीं की परन्तु रीति की भाँति ही वे भी अलंकारिक और श्रृंगारिक रचना के पारंगत थे यह पूर्णतः रीति ज्ञाता थे। जिनका काव्य शास्त्रीय ज्ञान से आबद्ध था लेकिन उनके लक्षणों के चक्कर में नहीं पड़े। आचार्य विश्वनाथ ने ऐसे कवियों को रीतिसिद्ध कवि की संज्ञा देकर रीतिबद्ध कवियों से भिन्न रखा है। रीतिसिद्ध के प्रतिनिधित्व कवि बिहारी, रसनिधि, नृपशम्भू, नवाज, हठीजी, पजनेश आदि हैं। उनमें से प्रसिद्ध कवि बिहारी रहे है जिनका एक मात्र ग्रन्थ बिहारी सतसई है।

१. बहुज्ञता एवं चमत्कार प्रदर्शन:

रीतिबद्ध कवियों में पाण्डित्य प्रदर्शन की जो प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, उसके कारण रीतिसिद्ध कवि काव्य में विविध विषयक ज्ञान का समावेश करके अपनी बहुज्ञता प्रदर्शित करते थे। जैसे बिहारी ने अपने काव्य में ज्योतिष, पुराण, आयुर्वेद, गणित, कामशास्त्र, नीति, चित्रकला आदि अनेक विषयों की जानकारी समाविष्ट है। बिहारी ने अपने काव्य में ज्योतिष के राजयोग प्रकरण का उल्लेख निम्न दोहे में है :

सनि कज्जल चख झख लगन उपज्यो सुदिन सनेह।

क्यों न नृपति है भोगवै लहि सुदेस सब देह॥

इसी प्रकार आयुर्वेद ज्ञान का परिचय उनके निम्न दोहे से प्राप्त होता है। विषम ज्वर का उपचार 'सुदर्शन' चूर्ण से होता है। सुदर्शन का श्लिष्ट प्रयोग करते हुए चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति का परिचय भी यहां दिया गया है :

यह विनसत नग राखि कैं जगत बड़ो जस लेहु।

जरी विषम ज्वर ज्याइए आइ सुदरसन देहु॥

रीतिसिद्ध कवियों ने भी रीतिबद्ध की तरह ही काव्य में यमक, श्लेष, अनुप्रास जैसे शब्दालंकारों का प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन हेतु किया गया है। वस्तुतः इस काल में शब्दों की पच्चीकारी एवं कला की रमणीयता पर ही अधिक ध्यान दिया गया। ये लोग इसी को कवि कर्म समझते थे। वर्ण्य विषय की मार्मिकता एवं भावव्यंजना पर इन्होंने उतना ध्यान नहीं दिया जितना अलंकार योजना पर दिया।

२. भक्ति एवं नीति :

बिहारी ने जिस प्रकार श्रृंगारिक रचना में महारत हासिल की उसी प्रकार उन्होंने भक्ति और नीति की रचनाएं लिखकर गागर में सागर भर दिया। इनके काव्य की प्रशंसा करते हुए डॉ.नगेन्द्र के कहते है - 'रीतिकाल का कोई भी कवि भक्तिभावना से हीन नहीं है - हो भी नहीं सकता था, क्योंकि भक्ति उसके लिए मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भौतिक रस की उपासना करते हुए उनके विलास जर्जर मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्ति रस में अनास्था प्रकट करें अथवा सैद्धान्तिक निषेध कर सकें।" बिहारी के कई दोहे है जो भक्ति परक है; लेकिन राधाकृष्ण के नाम पर लिखी गई रचनाओं में भक्तिभावना प्रमुख न होकर श्रृंगार भावना प्रमुख है। जैसे -

रीझि हैं सुकवि जोतौ जानौ कविताई।

न तौ राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो है॥

रीतिसिद्ध कवि बिहारी की कृति 'सतसई' में ७० दोहे भक्तिभावना के हैं। नीति सम्बन्धी उक्तियां भी इन कवियों ने पर्याप्त मात्रा में लिखी हैं। दरबारी वातावरण के सतसई में नीति के अनेक दोहे उपलब्ध है; यथा -

नर की अरु नल नीर की गति एकै करि जोय।

जेतो नीचौ है चले तेतो ऊंचो होय॥

घाघ, बेताल, वृंद एवं गिरधरदास ने नीति सम्बन्धी प्रचुर काव्य की रचना की थी। वृंद सतसई में नीति सम्बन्धी सुन्दर उक्तियों को काव्य रूप दिया गया है। यथा -

भले बुरे सब एक सम जौ लौं बोलत नांहि।

जानि परत हैं काग पिक रितु वसंत के मांहि॥

इस प्रकार बिहारी के काव्य में श्रृंगारिकता के साथ साथ भक्ति और नीति के भी दोहे प्रभावित रूप से दृष्टिपात है।

३. प्राकृतिक वर्णन:

रीतिसिद्ध काल में कवियों के प्रकृति का वर्णन प्रायः उद्दीपन हेतु चित्रण किया है। श्रृंगार के संयोग पक्ष एवं वियोग पक्ष को अभिव्यक्त करने के लिए प्रकृति का वर्णन विभिन्न अवस्था में किया गया है। बिहारी ने अपने काव्य में प्रकृति का प्रयोग काव्य में अधिकतर संयोग पक्ष को प्रधानता दी जिसमें उन्होंने षट ऋतू वर्णन एवं बारहमासा का वर्णन किया है; जिसमे बिहारी के दोहे इस प्रकार है -

रनित भृंग घंतावली झरित दान मधुनीर।
मंद मंद आवतु चाल्यो कुंजर कुज समीर॥
कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगतु तपोवन सो कियो दीरघ दाध निदाघ॥

प्रकृति के अनेक उपमान कवि ने नायिका के अंको की श्रृंगारिकता को अभिव्यक्त करने के लिए नख शिख वर्णन किये है।

४. श्रृंगार की सरस अभिव्यक्ति:

श्रृंगारिक रचना करना रीतिकालीन कवियों की प्रधान विशेषता हैं। संयोग पक्ष हो या वियोग पक्ष रीतिसिद्ध कवियों की श्रृंगारिक रचना अद्भुत हैं। श्रृंगारिक रचना में रीतिसिद्ध कवियों ने इसे लक्षणबद्ध किया लेकिन रीति सिद्ध कवियों ने इसे सामान रूप से लिखा जिसमें कोई भी नियम या शास्त्रीय बंधन नहीं थे। इसी कारण श्रृंगारिक रचना में रीतिबद्ध कवियों की तुलना में रीतिसिद्ध कवियों की रचनाओं में रस-संचार की क्षमता अधिक पायी जाती हैं जैसे बिहारी के काव्य में राधा-कृष्ण के श्रृंगारिक संयोग-पक्ष को इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं जैसे-

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय
सौंह करे भौहनी हंसे, दैन कहे, नटी जाइ।

इनके श्रृंगार कल्पना में जो मधुरता झलकती है यह रीति बद्ध कवियों में नहीं हैं। इसके अलावा ऋतू वर्णन, बारामासा वर्णन, नखशिख वर्णन को रीतिसिद्ध कवियों ने विशेष रूप से इन्हें काव्य का विषय बनाया हैं।

५. ब्रजभाषा का परिष्कृत रूप:

भाषा की दृष्टि से रीतिसिद्ध कवियों की भाषा अधिकतर ब्रज ही रहीं हैं वह भी काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग लोक भाषा ही रही हैं। बिहारी के भाषा के संदर्भ में आचार्य शुक्ल कहते हैं 'बिहारी की भाषा चलाती होने पर भी साहित्यिक हैं और शब्दों के रूप का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर हैं यह बात बहुत कम कवियों में पायी जाती हैं।" ब्रज के साथ-साथ इनके शब्दों में अरबी-फारसी शब्दों का उपयोग करते हैं जैसे बिहारी के दोहे -

सघन कुञ्ज, छाया सुखद सीतल सुरभि समीर।

मन हवे जात अजौं, वा जमुना के तीर॥

ब्रज भाषा में कोमलता, अर्थ प्रधानता, व्यंजनात्मकता की मात्रा अधिक पायी जाती हैं। रीति सिद्ध कवियों ने अपने काव्य में ब्रज भाषा को ही अपनाया हैं।

६. भावपक्ष एवं कलापक्ष का समन्वय:

रीतिसिद्ध कवियों की रचनाएं लक्षणबद्ध तथा शास्त्रीयबद्ध न होने के कारण काव्य में भाव पक्ष और कलापक्ष की प्रगल्भता मिलती हैं। रीतिबद्ध कवियों में शास्त्रीयबद्धता होने के कारण उनके काव्य में भाव पक्ष नीरस बन गया और उनमें कला की प्रधानता अधिक रही परन्तु रीतिसिद्ध काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष का समन्वय रहा। जैसे -

जपमाला छापा तिलक सरे न एकौ काम।

मन कांचे नाचे बृथा साँचे रांचे राम॥

कनक-कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।

वह खाए बौराय नर, यह पाए बौराय॥

इस प्रकार इनकी कविता की कल्पना में नवीनता ही नहीं बल्कि भाव और कला का लालित्य भी हैं।

७. अलंकार का प्रयोग:

रीतिबद्ध कवियों की भाँति ही रीति सिद्ध कवियों की रचनाओं में भी अलंकार योजना निपुणता के विविध रूप देखने मिलते हैं जैसे अनुप्रास, श्लेष अलंकारों का प्रयोग अधिक रूप से किया जाता हैं। किसी-किसी दोहों में कई अलंकार उलझ पड़े हैं परन्तु उसके कारण उनके काव्य में भद्दापन नहीं आया। जैसे असंगति और विरोधभास की मार्मिक प्रसिद्ध उक्तियां -

दृग अरुझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।

परति गाँठ दुर्जन हिए, दई नई यह रीति॥

तंत्रीनाद कबित्त रस, सरस राग रति रगं।

अनबूड़े बूड़े तरे, जे बूड़े सब अंग।

इस प्रकार काव्य में अलंकारों का प्रयोजन सही रूप में किया है।

८. शुद्ध कलात्मक दृष्टिकोण:

रीतिसिद्ध कवियों का कलात्मक दृष्टिकोण शुद्ध ही रहा है रीतिबद्ध कवियों का कलात्मक पक्ष शास्त्रीयता से अधिक जुड़ा हुआ था। इसके विपरीत रीतिसिद्ध कवियों का कलात्मक प्रयोजन शास्त्रीय रहित शुद्ध प्रयोजन था जिसके संदर्भ में आ. मिश्र कहते है कि 'हिंदी साहित्य के इतिहास में शुद्ध साहित्य की दृष्टि से काव्य-निर्माण करनेवालों की संख्या

रीतिकाल में इसी दृष्टि से काव्य निर्माण करनेवालों की संख्या इसकी अपेक्षा निश्चित ही न्यून-न्युन्तर है ।" शुद्ध कलात्मकता का तात्पर्य काव्य निखार से है । जो बिहारी, नवाज आदि कवियों में दिखाई देती है जो चाँद अशर्फ़ियों के लिए काव्य नहीं लिखते थे बल्कि काव्य की प्रतिबद्धता के कारण उनके काव्य में शुद्ध कलात्मकता निखरती है ।

९. मुक्तक काव्य रूप:

मुक्तक काव्य धारा का सही विकास रीतिसिद्ध साहित्य में देखा जा सकता हैं । जिसमें गाथा सप्तशती का नाम इस परम्परा में सर्वप्रथम आता है । यह जीवन को सहजता से सरल रूप से चित्रात्मक शैली में प्रस्तुत करनेवाला प्रथम मुक्तक काव्य है । इसके अलावा मुक्तक काव्य में जो गुण होते है बिहारी के दोहों में भी पुर्णतः विद्यमान दिखाई देते है । इनकी रचनाओं को देखकर मुक्तक काव्य के संदर्भ में आचार्य शुक्ल का कहना है कि 'मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में स्थायी प्रभाव ग्रहण करता हैं । इसमें तो रस के ऐसे छीटे पड़ते हैं जिनसे हृदयकालिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है ।"

९.४ रीतिमुक्त काव्यधारा

रीति मुक्त वह काव्य-धारा है जो शास्त्रीय तथा लक्षण ग्रंथो से मुक्त हों । जो स्वच्छन्द रूप से लिखा गया काव्य हो । कई कवि रीति शास्त्रों का निरूपण न करके अपने अनुभूतियों के सही अभिव्यक्ति की तलाश में स्वछन्द रूप से रचनाएं लिखी एक तरह से ये कवि अनुभूति और अभिव्यक्ति के धरातल पर विद्रोही थे । इनका विद्रोह काव्य रीतियों के प्रति ही नहीं तत्काल समाज के सामाजिक - राजनितिक परिस्थितियों के विरुद्ध भी था । इस काव्य धारा के कवियों में अधिकतर प्रबंध काव्य कम लिखकर श्रृंगारिक तथा फुटकल रचनायें लिखी हैं । इनकी रचनाएं सभी मुक्तक शैली में रहती हैं । इसमें भाव की प्रधानता अधिक होती हैं । इस काव्य धारा के प्रमुख कवि रसखान, घनानंद, आलम, ठाकुर आदि सभी रीतिमुक्त काव्यधारा के अंतर्गत है इन्होंने लक्षणबद्ध रचना नहीं लिखी । यह साहित्य धारा रीतिसाहित्य के प्रतिक्रियात्मक रूप से विकसित हुई है जिसके संदर्भ में डॉ.भागीरथ मिश्र जी कहते है कि 'वास्तव में यह रीति मुक्त होने की छटपटाहट रीतिकाल के आरम्भ में नहीं मिलती, वरन यह युग उत्तरार्ध में विकसित हुई हैं ।" रीतिमुक्त कवियों की रचनाओं को दृष्टि में रखकर आ. शुक्ल ने उन्हें निम्न वर्गों में विभक्त किया जा सकता हैं - स्वछन्दवादी कवि, रीतिमुक्त प्रबंधकार, रीतिमुक्त सूक्तिकार, रीतिमुक्त पद्यकार ।

१. रीति परम्पराओं का विरोध:

रीतिमुक्त काव्य में रीति परम्पराओं की परिपाठी पर नहीं चला बल्कि उनमें उनका विरोध दिखाई देता हैं . जैसे - लक्षणबद्ध रचना के प्रतिक्रिया के रूप में स्वछन्द धारा के काव्य की रचना दिखाई देती हैं । इनकी रचनाओं में बाह्यांग सजानेवाले उपकरण नहीं पाए जाते हैं अर्थात अतिशयोक्ति का प्रयोग कम दिखाई देता है । इनके काव्यों में काव्यशास्त्रीय ढंग से लिखे रचनाओं को उपेक्षित रखा जाता हैं तथा संवदेना की धरातल पर काव्य की रचना करके आंतरिक भाव को अभिव्यक्त किया गया हैं; जैसे - ठाकुर के काव्य में रीति-परम्परा का विरोध इस प्रकार दिखाई देता हैं -

"डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच

लोनत कवित्त किबों खेली करि जाने हैं।"

यह विरोध अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों धरातल पर हुआ हैं ये कवि काव्यों के बाह्यांग के सजानेवाले तत्त्वों को अनावश्यक मानते थे। देखा जाए तो इनका मुक्तक साहित्य रीति-अज्ञान की उपज नहीं हैं। ये काव्यशास्त्र से भी भली भाति परिचित थे।

२. काव्यगत स्वछन्द दृष्टिकोण:

रीतिकाव्य में अनुशासन की प्रधानता दिखाई देती हैं लेकिन रीतिमुक्तक काव्य में अनुभूति को प्रधानता दी हैं; जिससे उनकी रचनाएं स्वछंद अनुभूति का काव्य हैं। उन्होंने आंतरिक भाव को ही सर्वोपरी रखा हैं। जैसे - 'रीति सुजान सच्ची पटरानी बुद्धि बावरी है कर दासी।" वे कवित्त शास्त्रीयता पर नहीं बल्कि स्वछन्द भाव धारा प्रेम पर विश्वास करते थे। प्रेम भाव धारा की दृष्टि से घनानंद रीतिमुक्त धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं इनकी प्रशंसा करते हुए आ. शुक्ल जी लिखते हैं -

'प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जवान्दानी का ऐसा दावा रखनेवाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।"वे संवेदनाओंको सहजता से प्रगट करने में विश्वास करते थे। वे हमेशा राजाश्रय में रहे लेकिन चाटुकारिता की प्रवृत्ति को नहीं अपनाया। घनानंद कवि ने तो अपना राजाश्रय तक खो दिया लेकिन अपनी आंतरिक प्रवृत्ति पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया।

३. भाव-प्रवणता:

रीतिमुक्त कवियों में भाव प्रवणता इनकी काव्यधारा की प्रमुख विशेषता रही हैं। मनुष्य में भावना की प्रवीणता रहती हैं। हर मनुष्य भावनात्मक रूप से एक दुसरे से जुड़ा होता हैं रीति मुक्तक कवियों ने इन्हीं भावनाओं को अपनी कविता का मूल आधार बनाया हैं तथा यथार्थता को महत्त्वकम दिया हैं। वे दूसरी दुनिया में रमे रहते हैं और भावनात्मकता के कारण ही इनकी काव्यों में रहस्यात्मकता दिखाई देती हैं। इनकी रहस्यात्मकता बोधा के काव्य में दिखाई देता है

जैसे–

अति खीन मृनाल के तारहूँ तें, तेहि ऊपर पाँव दे आवनो है।

सुई बेह के द्वार सकै न तहां, परतीति को टाडो लादावनो है॥

भावुकता के कारण इनके काव्य में एक विलक्षण माधुर्य रमता हुआ दिखाई देता हैं जिसके कारण कहीं-कहीं रहस्यात्मकता की झलक दिखाई देती है हृदय ही उत्तेजना प्रवेग के साथ इनका काव्य लहराता हुआ अभिव्यक्त होता है।

४. वैयक्तिकता:

काव्य में व्यक्ति की वैयक्तिकता की झलक दिखाई देती हैं। जिसमें अनुभूति और भावना का मिश्रण रहता हैं इसलिए वैयक्तिकता इनके काव्य की एक विशेषता हैं। रीति मुक्तक कवियों

ने अपनी निजी अनुभूतियाँ कविताओं के माध्यम अभिव्यक्त किया हैं जैसे–ठाकुर की स्पष्ट वादिता और लोकंमुख भाषा, द्विजदेव का प्राकृतिक प्रेम, घनानंद की भावोद्रेकता आदि।

इस प्रकार रीतिमुक्त काव्य में कवियों ने निजी वैयक्तिकता उनकी विशेषता रही हैं।

५. प्रेम का उद्दंत स्वरूप:

काव्य में प्रेम के तत्त्व की प्रधानता आदिकाल से ही दिखाई देती है परन्तु रीतिकाल में विशेष रूप में मिलती हैं। रीतिमुक्तक के स्वछन्द कवि प्रेम के मतवाले कवि थे। इनका प्रेम ना ही शारीरिक था न काल्पनिक था न पुस्तकीय था उनका प्रेम शुद्ध भावों के धरातल पर अलौकिक था। इनके प्रेम में विरह की प्रधानता अधिक पायी जाती है। जहां प्रेम उनके लिए साधना भी है साध्य भी। इनका प्रेम विलासिता और वासना के स्तर से अधिक ऊँचा दिखाई देता हैं। जैसे बोधा का काव्य सुजान के प्रति जो प्रेम भाव है वो लौकिक ना होकर अलौकिक हो गया है जैसे–

एक सुभान के आनन पे, कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को।

जानि मिले तो जहान मिले तो जहान कहाँ को।

६. नारी के प्रति नया दृष्टिकोण:

रीतिमुक्त काल के कवियों का नारी के प्रति दृष्टिकोण उदात्त रहा हैं। उनके प्रति सौन्दर्य भाव का वर्णन कवियों ने सूक्ष्म एवं उद्वत रूप से किया हैं। इसके पूर्व रीतिसिद्ध और रीतिबद्ध साहित्य में नारी के प्रति दृष्ट, वासनायुक्त और कलुषित रहा हैं। रीतिकालीन कवियों के नारी का वर्णन सिर्फ शारीरिक नख शिख वर्णन है जिससे कामुकता को बढ़ावा मिलता रहा लेकिन रीति मुक्त स्वछन्द कवियों की दृष्टि आस्था की रहीं है इसलिए उन्होंने नख शिख वर्णन की परिपाठी को त्यागकर सौन्दर्य का वर्णन अनुभूति के धरातल पर किया हैं। जैसे–प्रेयसी का सौन्दर्य चित्रण करने के लिए उनकी अनोखी उप्रेक्षाएं अत्यंत आकर्षक बन जाती हैं जिसका मनोरम वर्णन निम्न प्रकार से है -

श्याम घटा लिपटी थिर बीजू के, सोहे अमावस अंग उज्यारी।

घूम के पुंज में ज्वाल की माल सी, पे दृग सीतलता सुखकारी॥

७. प्राकृतिक चित्रण:

रीति-कवियों ने प्रकृति का चित्रण सौन्दर्यबोध तथा विरह में बारहमासा और उद्दीपन के रूप में किया हैं; जो की यहाँ रीतिकाल की एक परिपाटी के रूप में निर्वाह हुआ हैं। यहाँ पर प्रकृति का अपना मूल रूप नहीं एक परम्परागत शब्दों, बिम्बों के रूप में वर्णन हुआ हैं। यह विशेषता रीतिमुक्त काव्य कवियों में भी विद्यमान हैं इन्होंने प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन विभिन्न

रूप में किया हैं जिसमें कवि की रागात्मकता दिखाई देती हैं जैसे–कवि द्विजदेव के काव्य में प्रकृति वर्णन-

'डोली रे विकासे तरु एकै

सू एकै रहे हैं नवाइकै सौसहि ।

त्यों द्विजदेव मरांड के व्याजही

एकै अनंद के आंसू बरिसहिं । तैसेउ के अनुराग भरे

कर पल्लव जोरि के एकै असीसाही ।।"

इसके अतिरिक्त बोधा ने विशेष रूप से प्रकृति चित्रण में वर्षा ऋतु में हो रही वारिश को 'विरह वारिश' के रूप में वर्णित किया हैं ।

८. भाषा का प्रयोग:

रीतिमुक्त काव्य में कवियों ने भाषा का प्रयोग लोग भाषा के सहज रूप में किया हैं इनकी भाषा प्रायः संगीत और लय गुणों से युक्त हैं । इनमें कही भी कृत्रिमता लक्षणबद्धता नहीं पायी जाती । रीति-मुक्तक कवियों की भाषा अधिकतर टकसाली ब्रजभाषा है और अर्थ गाम्भीर्य, मधुर तथा प्रांजल भी हैं । इनके भाषाओं में कहीं-न-कही अभिव्यक्ति के धरातल पर अरबी और फारसी साहित्य के ज्ञाता थे इसलिए इनकी भाषा में फारसी शैलियों का प्रभाव दिखाई देता हैं । भाषा में काव्य सौन्दर्यता लाने के लिए प्रतीक, रूपक, लोकोक्तियाँ आदि भाषा-तत्त्वों से भाषा की अर्थवता में वृद्धि दिखाई देती हैं । डॉ. मनोहर लाल गौड़ के शब्दों में 'ठाकुर ने लोकोक्तियों के प्रयोग द्वारा, रसखान ने मुहावरों द्वारा, आनंदघन ने लक्षणा, मुहावरों, व्याकरण- शुद्धि आदि गुणों से भाषा के स्वरुप को सुसंस्कृत बनाया हैं ।'

९. मुक्तक रचनाएं की प्रधानता:

मुक्तक रचनाएं रीतिमुक्त काव्य की प्रधान विशेषता रहीं हैं । वह प्रबंध काव्य में नहीं बंधे रहे अपनी भावों को अभिव्यक्त करने के लिए मुक्तक शैली को अपनाया हैं । मुक्तक कविता के संदर्भ में आ. शुक्ल जी कहते हैं "यदि प्रबंधकाव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता" मुक्तक काव्य में हृदय की प्रधानता होती हैं जो हृदय में एक स्थायी भाव ग्रहण करता हैं । रीति-मुक्त काव्य का प्रायः अधिकतर कवियों ने मुक्तक रचनाएं लिखी हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्षतः कहा जाता हैं कि रीतिमुक्त काव्य हिंदी साहित्य का अमूल्य काव्य धारा हैं । जिस प्रकार प्रेम के पीर कवियों ने प्रेम के उदात्त स्वरुप को लोगो तक परिचित करवाया तथा दूसरी और रीतिकालीन काव्यधारा की परिपाठी से कविता को मुक्ति दिलाई । भाषा की शक्ति का अद्भुत प्रयोग कर हृदय की अनुभूतियों को प्रभावी रूप से प्रकट किया और प्रेम के उद्दंत तत्व को काव्य के माध्यम से लोगों तक पहुंचायाँ ।

९.५ सारांश

प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थियों ने रीतिसिध्द, रितिबध्द और रीतिमुक्त की प्रवृत्तियों का अध्ययन किया है । इस रीतिकाल में अनेक राजाओंके आश्रय में कवि रहा करते थे । उनका मनोरंजन करने के लिए यही कवि श्रृंगारिक रचनाओंका निर्माण करते थे। यही श्रृंगारिकता

रीतिकाल के प्रमुख प्रवृत्तियों में से एक रही है। इसी प्रवृत्तियों को विद्यार्थी इस इकाई के माध्यम से समझ सकें।

९.६ लघुत्तरीय प्रश्न

१) आ. रामचंद्र शुक्ल ने रीतिकाल का आरंभ करनेवाले कवि किसे माना है?

२) बिहारी किस काव्य-धारा के प्रमुख कवि है?

३) रसनिधि का वास्तविक नाम क्या था?

४) घनानंद किस बादशाह के यहाँ मुंशी थे?

५) 'काव्य निर्णय' किस कवि की रचना है?

६) तृप शंभु कवि किसके पुत्र थे?

९.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) रीतिबध्द काव्य-धारा की प्रवृत्तियों को स्पष्ट करें।

२) रीतिसिद्ध काव्य-धारा की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालें।

३) रीतिमुक्त काव्य-धारा के प्रवृत्तियों पर विशद चर्चा करें।

४) रीतिकाल के प्रमुख कवियों पर प्रकाश डालें।

९.८ संदर्भ पुस्तकें

१) हिंदी साहित्य का इतिहास - आ. रामचंद्र शुक्ल

२) हिंदी साहित्य का इतिहास - सं. डॉ. नगेंद्र

३) हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - रामकुमार वर्मा

४) हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह रीतिकाल - डॉ. नगेंद्र

५) हिंदी साहित्य का सवेंदनात्मक विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी

*****